بسم الله الرحمن الرحيم

जिन्हें जन्नतें पुकारती हैं !

मुसलमानों की सरज़मीनों की सुरक्षा का क़ानून !

✖ पहली बात ✖

उम्मते–मुस्लिमा आज उदास है, मग़मूम(ग़मज़दा)है! ग़ैरों के सितम का तो शिकवा ही बेजा है कि वो ग़ैर ठहरे, लेकिन अगर अपने भी मरहम रखने से कतराने लगें तो फिर जिगर के ज़ख्म किसे दिखाए जाएं? मानाकि मुबश्शिरात के ज़िम्मे है कि क़ारिईन को उम्मत के वक़ार व सरबुलन्दी के ख़्वाब दिखाए, उन ख़्वाबों की तअबीरों को आपके सामने रखे! लेकिन उन ख़्वाबों की हसीन तअबीरें भी हर आँख से अपने हिस्से के रतजगे मांगती हैं, हर दिल से मौसमे–गुल की ज़रख़ेज़ी का सामान तलब करती हैं,

दिल की खेती को है पानी की ज़रूरत मक़सूद,
इस क़द्र अश्क बहाओ कि डुबो दो खुद को !

यह किताब जो आपके हाथों में आई है, लिखने वालों ने उन्हें अपने खूने–जिगर से लिखा है, दर्द के दरिया में डूब कर ही यह गौहर निकाले जाते हैं! पस, इस दर्दे–दिल को आगे से आगे बांटिये ताकि जिहाद का यह भूला हुआ गुमगश्ता फ़रीज़ा एक बार फिर मैदाने–बद्र ही की तरह की निदा–ए–हक़ व तागूत के ख़ात्मे के हंगामी व जोशिले नारों और सदाओं से फिज़ाओं को गुंजा दे।

शैख़ अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम शहीद रहमतुल्लाहि अलैह का यह फ़तवा (बशक्ले–किताब), जो इस वक़्त आपके हाथों में है, आपके लिये भी है और आपके अहबाब के लिये भी, आपके पड़ौसियों और अक़रबा के लिये भी, बल्कि हर मुसलमान के लिये यह एक गिरां–माया(अनमोल)तुहफा है कि उन्हीं से उन्हीं की जानों, मालों, इज़्ज़तों और ज़मीनों की हिफ़ाज़त का सवाल है जिसका जवाब इस(फ़तवे)में दिया गया है। इसे पढ़िये, समझिये..... यह खुद आपको बताएगा कि इसे पढ़ाना और समझाना किस क़द्र आज ज़रूरी व एक मुसलमान के लिये आज की एक सबसे बड़ी ज़रूरत है।

उम्मते–मुस्लिमा आज उदास है, मग़मूम है ! आइये, उसकी उदासी के असबाब को समझें ! आइये, उसके ग़मों को दूर करने का सामान तैयार करें, शायद के हम उसका हल भी तैयार कर लें, लेकिन उसके लिये भी हौसले व जज़्बे की ज़रूरत है, जो फिलहाल आपकी व हमारी अमली कोशिशों से तो कोसों दूर तक भी नज़र नहीं आता। हाय अफ़सोस!

क्या मिल्लते–इस्लामिया की ज़रख़ेज़ खेतियां आप हैं?

क्या रसूले–मुकर्रम (ﷺ) की निफ़ाज़े–शरिआ आपकी इन कोशिशों से मुमकिन है?

क्या रसूले–मुहतरम(ﷺ)की **ज़ुल्फ़िकार की खनक** आपके किरदार से अयाँ हो पा रही है?

क्या अबूबक्रो–उमर, खालिद बिन वलीद, मुसेएब, तारिक बिन ज़्याद, सलाहुद्दीन अय्यूबी की क़ायमकर्दा इस्लामी हिफ़ाज़ती फ़सीलों को आप क़ायमो–दायम रख पाने का

मअद्दा अपने–आप में पाते हैं?

यक़ीनन, नहीं, क्योंकि हमारे अमली क़िरदार व कोशिशें तो इस ओर बिल्कुल भी निशानदेही के अलामात को ज़ाहिर नहीं कर रही हैं।

ख़ैर, मैं मुतर्जिम, और कोई आज़माइश व सवालात के कुएं से आपको व खुद अपने आपको बचाते हुए अल्लाह की तौफ़ीक़ से यह फ़तवा आप अल्लाह के दीन के अन्सारियों के हाथों में सौंपता हूं कि लिल्लाह, इस फ़तवे (बशक्ले किताब) को सिर्फ अपने मुतालेअ के ख़जाने को मजीद निखारने के लिये न पढ़ें, बल्कि इसकी अमली जद्दोजहद की सूरतों को आसान व सबके लिये मयस्सर असबाब को बनाने का ज़रिया बनाएं। वरना अमल के बिना ऐसे फ़तवों की कामयाबी ही क्या ?

देता ही रहा शैख़ किताबों के हवाले, ग़ाज़ी ने चमकती हुई तलवार उठा ली !

इसके ज़रिये उलम–ए–सू, शिकमपरस्त और दीनफ़रोश आलिमों (माफ़ी के साथ) को उभारिये, उनसे कहिये कि अपने खुत्बात के धारे को मोड़िये, उनसे अवामुन्नास को जिहाद के इस भूले हुए सबक़ को दोहराने की इल्तजा किजिये, अफ़सोस, जो काम उलम–ए–रब्बानी होने के नाते उनका था वो काम आम लोगों के कुनबे में से सिर्फ कुछ हजार लोगों के ज़रिये हो रहा है, हो सकता है आप जैसा दीनपसन्द उनमें से किसी के सोए हुए अहसासातो–जज़्बात को जगा दे, क्योंकि हमारा काम तो सिर्फ पहुंचा देना है, तौफ़ीक़ देना तो अल्लाह ही के ज़िम्मे है। हकीमे–उम्मत, अल्लामा इक़बाल ने इन उलम–ए–सू के लिये अपनी दूरन्देशी का मुज़ाहिरा अपने इन अल्फ़ाज़ के ज़रिये बहुत पहले ही कर दिया था,

गला तो घोंट दिया, अहले–मदरसा ने तेरा,
कहाँ से आए सदा, ला इलाह इल्ललला़ह,

इस्लामी सरज़मीनों की दिफ़ाअ का क़ानून, इस मसले के तहत शैख़ अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम शहीद रह. के इस फतवे पर कमोबेश 113 ज़य्यिद उलम–ए–दीन की ताईदो–हिमायत की सनद साथ है, ***जिनमें अब्दुल्लाह बिन बाज़ रह. और शैख़ उसैमीन अब्दुल्लाह, नसाअ अल वान, शैख़ मुहम्मद नजीब अल मुअती व शैख़ इदरीस जैसे उलम–ए–रब्बानी के नाम हैं।*** इन 113 उलम–ए–रब्बानी की सनदो–ताईद के बाद भी हमारे यहाँ के आलिमों के पास जिहाद की अहम शर्तों, उसके तअय्युन के लिये अलग–अलग अदवार की बातें, फ़र्ज़े–ऐन व फ़र्ज़े–किफ़ाया की बेइन्तिहा बहसो–मुबाहिसे और कहीं–कहीं तो सिरे ही से जिहाद की फ़र्ज़ियत का इन्कार जैसे तकलीफ़देह सवालो–जवाब के अफ़साने सुनने व देखने में आते रहते हैं।

ऐ अल्लाह! हमें माफ़ फ़रमा और हमें तौफ़ीक दे कि हम तेरे दीन के मुआविनो–मददगार बन्दों को इस दीन की ***सबसे बुलन्दतरीन चोटी, जिहाद*** से आशना करा सकें, साथ ही उलम–ए–दीन को भी तौफ़ीक़ दे कि वो इस दीन के सच्चे दाई होने का अपना फ़र्ज़ अदा कर सकें। **(आमीन)**

अलहम्दुलिल्लाहि व कफ़ा व सलामुन अ़ला इबाहिदिल्लज़ी नस्तफ़ा,अम्मा बअद,

بسم الله الرحمن الرحيم

मुतर्जम मौसूफ क़ाबिले–सदसताईश व तहसीन (बधाई व तअ़रीफ़ के लायक़) हैं कि उन्होंने लिसानुल्जिहाद, मुर्शिदुलमुजाहिदीन अल्लामा **डॉक्टर अ़ब्दुल्लाह अ़ज़्ज़ाम शहीद रहमतुल्लाह अलैह** की गिराँक़द्र ज़री–किताब **''ईमान के बाद अहमतरीन फर्ज़े–ऐ़न दिफाई जिहाद''** का तर्जुमा सलीस व शगुफ़ता उर्दू ज़बान में करके इस तबके पर अहसाने–अज़ीम फर्माया है।

जिहादे–अफ़गानिस्तान के अ़ज़ीम सालार दुक्तूर अ़ब्दुल्लाह अ़ज़्ज़ाम शहीद रहमतुल्लाह अलैह मुहताजे–तआरूफ नहीं। तमाम आ़लमे–इस्लाम को पता है कि वोह जिहादे–अफग़ानिस्तान के रूहे–रवां थे। उनकी दीनी अहमियत व ग़ैरत और ईमानी जुर्रअत व बहादुरी से लबरेज़ वलवलाअंगेज ख़ुतबात और तक़रीरों ने बिलादे–अरब व अ़ज़म (अरबो–अ़ज़म के शहरियों)के फरज़न्दाने–इस्लाम के कुलूब(दिलों) व अरवाह (रूहों)में सोए हुए जिहादी एहसासात व जज़बात को ललकारा। अ़रबी जराइद व मुजल्लात (जनसम्पर्क माध्यम)और अख़बारात में अफग़ानिस्तान के ग़य्यूर मुसलमानों पर रूसी दरिन्दों की वहशियाना यलग़ार व बरबरियत के खिलाफ़ दिफाई जिहाद की अहमियत पर जानदार मक़ालात(शोध–पत्र)शाए किए, मशाइख और उलमाए–हिजाज़ और बिलादे–अ़रब (अरब के शहरों) को अफग़ानिस्तान के पाकीज़ा जिहाद की तरफ मुतवज्जोह किया। शबाब व शुयूख़(नौजवान व उलम–ए–दीन) से अफग़ानिस्तान का मैदाने–कारज़ार भर दिया।

इस अज़ीम जिहादी क़ाइद से मेरी पहली मुलाक़ात मीना की मुक़द्दस सरज़मीन पर हुई थी। मेरे ख़ालाज़ाद भाई मौलाना सरवत महबूब अ़ली शाह साहब, उर्दुन यूनिवर्सिटी में पढ़ रहे थे, वो मुझे उर्दुनी तल्बा के साथ मीना में मिले। उन्होंने मुझे यौमुन्नहर(ईदुलअज़्हा) के दिन नमाज़े–ईशा के बाद दावत पर बुलाया। मैं मुक़र्ररा वक़्त पर उर्दुनी बैअसतुल–हज(हज कमेटी के ज़िम्मेदारान)के मख़ीमात (खेमों) में हाज़िर हुआ। युनिवर्सिटी के प्रोफेसरों और तल्बा से मुलाक़ात हुई। खुशक़िस्मती से मरहूम व मग़फूर दुक्तूर अ़ब्दुल्लाह अ़ज़्ज़ाम इस जमाअत के सरबराह थे उन्होंने मुझसे पाकिस्तान के उलम–ए–किराम और मदारिस के बारे में इस्तफसारात (सवालात) किए। मैंने उलम–ए–किराम और मदारिस के तफसीली हालात बयान किए। फिर शैख़ फर्माने लगे कि आज उलम–ए–किराम और रिजालुद्दीन की ज़िम्मेदारियाँ बढ़ गई हैं, चारों तरफ से दुश्मनाने–इस्लाम, इस्लामी शआ़ईर, इस्लामी तशख़्ख़ुस के मिटाने में मुनज़्ज़म समझौते के तहत बड़ी तेज़ी से मसरूफे–अ़मल हैं। वोह बहुत ही पुरसोज़ अंदाज में मुसलमानों की हालते–ज़ार पर हसरत व अफसोस कर रहे थे। फिर चन्द सालों के बाद जब अफग़ानिस्तान में रूसी साम्राज्य के खिलाफ़ अलमे–जिहाद

बुलन्द हुआ तो मरहूम अ़ब्दुल्लाह अज़्ज़ाम मुक़दमतुल्जैश(फ़ौज के सिपहसालार)के तौर पर सफे–अव्वल में नज़र आए, वोह दिन–रात जिहाद की शमा पर परवानों की तरह झपटते रहे और बिलआख़िर अपने लख़्ते–जिगर के साथ शहादते–उज़्मा के आअ़ला व अर्फा मक़ाम पर फाइज़ हुए।

सक़अल्लाहु सराहू व ज़अलल जन्नत मस्वाह

(अल्लाह उनकी क़ब्र को नूर से भर दे,और जन्नत उनका ठिकाना बनाए,आमीन।)

आख़िर में, मैं एक बार फिर मुतर्जम मौसूफ की इस अज़ीम जिहादी खिदमत पर दिल की गहराइयों से मुबारकबाद पेश कर रहा हूँ और बारगाहे–इलाही में दस्त–ब–दुआ हूँ कि रब्बुलआलमीन ज़लजलाल, मौसूफ को इस दीनी, मज़हबी काविश का सिला दोनों दारैन में नसीब फरमा और इस किताब से अहले–इस्लाम को इस्तफादा की तौफीक़ अता फरमा।

वलिल्लाहिल हम्दि अव्वलन व आख़िरन व सल्ललाहु तआला अला ख़ैयरि व ख़लक़िही मुहम्मदिन व अलाआलि व असहाबिही अजमईन.

शेरअली, शाह अल–मदनी, उस्ताज़ुल्हदीस,
जामिया दारूल उलूम हक़्क़ानिया, अकूड़ा ख़टक !

मौलाना अल्ताफुर्रहमान बनवी,
उस्ताद जामिआ इम्दादुल–उलूम,
जामेअ मस्जिद, दरवेश, पेशावर

नबी(ﷺ)का इर्शादे–गिरामी है, यानी **"मुझे जामेअ कलिमात अता किए गए हैं।"**जिसका हासिल ये है कि अल्लाह तआला ने उनको बहुत सादा और मुख़्तसर अल्फ़ाज़ में बहुत बड़ी–बड़ी और दूर–रस हक़ीक़तों को बयान करने का मलका(क़ुदरत) अता फरमाया था। बिलाशुबहा नबी(ﷺ)की अहादीस,जामेअ–कलामी का बेहतरीन नमूना हैं। इस्लाम की वज़ाहत करते हुए नबी(ﷺ)ने एक मौक़े पर जिहाद के बारे में **"ज़ुरवतुस्सनामिह"**के अल्फ़ाज़ इस्तेमाल फरमाए हैं। ***ज़ुरवत्ह,किसी चीज़ की बुलंदतरीन चोटी और उम्दा हिस्से को कहते हैं, जिसको हासिल करके आदमी उस चीज़ की असल हक़ीक़त और पूरी मअनवियत(असल मतलब)को पा जाता है।***

इन्सानी तारीख़ और नफसियात के वसीअ अमीक़ (बेहद लम्बे व गहरे)मुतालेअ से यह बात दो–जमाअ– दो,चार,की तरह एक मुसल्लमा(खुली व साफ़)हक़ीक़त की सूरत में सामने आती है कि ***इन्सान किसी मक़सदे–अज़ीज़ के हुसूल के लिए जान की बाज़ी सबसे आख़िर में लगाता है।*** छोटे–छोटे मरग़ूबात के लिए तो वोह सब कुछ तज देने पर आमादा होता है लेकिन जान का नज़राना देने में वोह बहुत कंजूस साबित हुआ है। ज़िंदग़ी की क़ुर्बानी सबसे आख़िर में और फक़त उसी मक़सद के लिए वोह पेश करता है जिससे वोह न सिर्फ अक़्ली बल्कि तबअी तौर पर भी मुहब्बत की इन्तिहा तक पहुँचा हुआ हो। किसी भी चीज़ से मुहब्बत का इक़रार व एअतराफ या दावा करने के बाद उसकी जांच परख करने की बेहतरीन कसौटी उस पर जान क़ुर्बान करना ही क़रार पाती है।

नबी(ﷺ)के जिहाद के बारे में ज़िक्र किये गए अल्फ़ाज़ **(ज़ुरवतुस्सनामिल इस्लाम अल जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह)** इस हक़ीक़त की शिनाख़्त करते हैं कि इस्लाम की असल हक़ीक़त और मअनवियत उन्हीं लोगों को हासिल होती है जो उसके लिए जान की बाज़ी लगा देने से दरेग़ नही करते ***क्योंकि हदीस की ज़बान में जिहाद नाम ही जान की क़ुर्बानी देने का है।*** एक बुज़ुर्ग फरमा रहे थे कि मदीना–मुनव्वरा में ग़ो–एअतक़ादी (अगर्चे यक़ीनी) मुनाफिक़ीन की भी कमी न थी लेकिन अक्सरो–बेशतर मुनाफिक़ीन का तअल्लुक उसी गिरोह से था जिनको दीन के ग़लबे और सरबुलन्दी के लिए जिहाद का याराना था,सो उसी मुश्किल ने उनको मुनाफिक़त की मुहलिकतरीन वादी में धकेल दिया। मैं समझता हूँ कि यह बात जिस तरह उस वक़्त सही और बजा थी,चौदह सौ साल गुज़रने के बाद आज भी ठीक–ठीक उसी तरह बल्कि उससे भी कहीं बढ़कर सही है!

बहुत बड़े–बड़े रिवायती क़िस्म के दीनदार और सुलहे–कुल के अलमबरदार (जमाअत व जमिअतों के औहदेदारान)जिहाद के नाम पर नाक भौंए चढ़ाते हैं और बड़ी

नागुफ्तग़ी(बेरूखापन)और दूर अज़कार क़िस्म की ताविलात से उसकी अहमियत कम करने के दरपे हैं, क़ुर्आन व हदीस की नुसूस (व दलाइल) और फ़ुक़्ह–ए–किराम की तशरीहात से सरफ़े–नज़र (नज़रअन्दाजी)करते हुए ख़्वामख़्वाह के लैतो–लअल (किन्तु–परन्तु) से उसमें कीड़े निकालते हैं। ***खुद अपने हिस्से की ज़िम्मेदारी अदा नही करते और दूसरों को भी उस ज़िम्मेदारी का अहसास नही करने देते।***

लेकिन इन बातों के बावजूद नामालूम अल्लाह तआला ने इस्लाम की फितरत में क्या अजीबो–गरीब ख़ासियतो–दिइयत फर्माई है कि जब भी दुश्मनाने–इस्लाम का ग़ल्बा बज़ाहिर एक हक़ीक़ते–साबिता बनने लगता है और हर तरफ से तह–ब–तह मायूसियाँ छाने लगती हैं तो ग़ैर–मुतवक़्क़ेअ तौर पर इस्लाम खुद ही अपने अंदर से खींच–खींच कर हर नतीजे से बेपरवाह ऐसे पुरजोश मर्दे–मुजाहिदों को मुक़ाबले के लिए महाज़े–जंग पर ला खड़ा करता है जिनके मज़बूत हौंसले और अज़ाईम पहाड़ों से टकराकर उन्हें पाश–पाश करने के लिए बेताबो–बेक़रार होते हैं। इस्लामी तारीख़ में ये वाक़िया एक बार नहीं बल्कि बार–बार पेश आ चुका है और आज भी हम आंखें फाड़कर बड़ी हैरत व इस्तिजाब से इस अक़्ल को हैरान कर देने वाले मंज़र को अपने रूबरू देख रहे हैं और इस्लाम की अपनी तासीर बिल्ख़ासियत के सिवा उसकी कोई और मअक़ूल तौजिह (व्याख्या) नहीं कर पा रहे हैं।

दुनिया की एक बड़ी समझी जानेवाली क़ौम रूस ने बेसरो–सामान अफ़ग़ानिस्तान को लुक़्म–ए–तर समझकर बड़े एअतमाद(यकीन) और जोशो–ख़रोश से उस पर हमला किया लेकिन अफ़ग़ानियों ने मादियत के उस सैलाब को (अल्लाह की तौफ़ीक़ के साथ) रूहानियत के ज़ोर से रोका, जिहाद का अलम उठाया और बिलआख़िर रूस अपने ज़ख़्म चाटता हुआ ज़लीलो–ख़्वार होकर भाग निकला। इसमें शक नहीं कि रूस की पसपाई और शिकस्त में इस्लाम–दुश्मनों की अपने अग़राज(मक़सद)के लिए रिफाक़त और पश्तीबानी ने भी अपना असर दिखाया,लेकिन फ़तह व ज़फर का असल सेहरा अ़रब व अ़जम के उन्हीं मुजाहिदीन के सर है जिन्होंने अल्लाह तआला का नाम लेकर पहाड़ों से टकराना तै किया और बारग़ाहे–ईलाही में सुर्ख़रू होकर पहुँचे।

बनाकर दंद खुश रस्मे–बखाक़ो–ख़ून ग़ल्तीदन
खुदा रहमत कुनद ईं आशिक़ाने–पाक तिनतरा

इन्हीं अ़रब मुजाहिदीन की सफे–अव्वल में एक बहुत ही मुअज़्ज़ज़,महबूब और रोशनतरीन नाम **अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम शहीद रह.** का है जिन्होंने अपने खुलूस,लगन और जोशो–ख़रोश के ज़रिए जिहादे–अफ़ग़ानिस्तान के हवाले से वोह रूत्बा हासिल किया जिसका अ़शरे–अशीर(दसवां हिस्सा)भी किसी मोमिन के लिए बहुत बड़ा तम्ग़ा–ए–इम्तियाज़ और माया–ए– इफितख़ार(फ़ख्र का निशान)समझा जा सकता है। उन्होंने सैफो–सनान और(तलवार की ज़बान) क़लमो–लिसान(ज़बान,यानि तक़रीर)के हर महाज़

पर दुश्मन का डटकर मुकाबला किया और इस सिलसिले में किसी थकावट और यास (मायूसी)को अपने पास फ़टकने न दिया। मरहूम जो एक मर्तबा अफ़ग़ानिस्तान में कुफ्र के खिलाफ सरगर्मे–अमल हो गए तो फिर उसी के हुए रहे, बिलआख़िर जान का नज़राना पेश किया, शहादत के रूत्ब–ए–उज़्मा पर फाइज़ हुए और **"आशा सईदन वमाता शहीदन"** के मिस्दाक़े–बरहक़ ठहरे।

एक तवील अरसे के बाद रूसी साम्राज्य के खिलाफ जिन लोगों ने फरीज़–ए–जिहाद के आहया(हुसूल व उसके मक़सद)में बुनियादी क़िरदार अदा किया,शहीद अ़ब्दुल्लाह अज़्ज़ाम उन सबमें नुमायातरीन शख्सियत के हामिल हैं। **शैख़ उसामा बिन लादेन शहीद** (रह.) और उनके रूफक़ा ने इसी तसलसुल को आगे बढ़ाया, जिसके ज़ेरे–असर पूरी दुनिया में जिहाद का गलग़ला बुलंद हुआ **"मअरक–ए–मेनहट्टन" (ग्यारह सितम्बर 2001 ई.)** के बाद, कुफ्र ने मुसलमानों पर अरसा–ए–हयात(ज़िन्दगी को) तंग करना शुरू किया तो इस्लाम की फितरत ने एक मर्तबा फिर अंगड़ाई ली और मुख्तलिफ जवानिब व अतराफ(दिशाओं व कोनों)से उश्शाके–जिहाद(जिहाद के चाहने वालों) ने**"तयरन अबाबील"** का रूहपरवर समाँ बांधा और आज हालत ये है कि किसी नामो–नमूद और मफाद से बेपरवाह हज़ारों नौजवान मशरिक़ो–मग़रिब से आकर शहीदी हमलों के लिए अपने नाम दर्ज करवा रहे हैं और कुफ्र के घरों को जलाकर राख कर देने के लिए बेताब बिजलियों की तरह कौंध रहे हैं।

पूरी दुनिया में मुसलमानों के वसाइल(संसाधनों व मिल्कियत) और इक़्तिदारो–इख़्तियार पर काबिज़ फरमा–रवां तबक़ा आ़म तौर पर कुफ्र के आलाकारों की सफ में खड़ा है। लेकिन हलावते–ईमानी की दौलत से मालामाल और ग़ल्ब–ए–दीन के जज़्बे से सरशार आमातुल्मुस्लिमीन(आम मुसलमानों की जमाअत) दुनिया की"आ़लमी ताक़त" होने के दावेदार अमरीका के लिए लोहे के चने साबित हो रहे हैं। *अल्लाहुम्मा ज़िद–फ़ज़िद*,(ऐ अल्लाह ! दिन ब दिन ऐसे अफ़राद बढ़ाता रह) यह सब कुछ शहीद अ़ब्दुल्लाह अज़्ज़ाम रह. के काश्तकर्दा जिहाद की खेतियों के वोह मीठे फल व फूल हैं,जिनसे दज्जालियत के इस गए गुज़रे दौर में भी अहले–ईमान के काम व दहन मुतलज़्ज़(खुश व लज़्ज़तआमेज़) हो रहे हैं।

कुफ्र के खिलाफ बरसरे–पैकर आज के तमाम मुजाहिदीन, अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम शहीद की ***रूहानी औलाद*** व ज़ुर्रियत हैं, जो उन्हीं की तारीख को पाया–ए–तकमील तक पहुंचाने के लिए रवां–दवां हैं। इराक़ व अफ़ग़ानिस्तान के यही मुजाहिदीन मिल्लते–इस्लामिया की आंख के तारे हैं ***जो पूरी मिल्लत की तरफ से दिफाअ़े–इस्लाम का फरीज़ा अदा कर रहे हैं। कुफ्र के ऐवानों (महलों)में उनके रौब व दबदबे से ज़लज़ला पाया जाता है। दुश्मनों के परोपैगन्ड़े में आकर उनको दहशतगर्द क़रार देने वाले या***

तो हददर्जा सादगी और जिहालत का शिकार हैं और या फिर दुनिया की खातिर अपनी आख़िरत को बर्बाद करने वाले हैं मुसलमानों के लिए उन आस्तीन के सांपों से बहुत अहतियात बरतना लाज़िम है।

शैख अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम रह. शहीद का सारा तहरीरी काम चार मबसूत जिल्दों में छपकर बहुत पहले (पाकिस्तान में) मंज़रे–आम पर आ चुका है। मुतर्जम मौसूफ ने इसी मवाद में से, जिहाद के मौजू पर उनके एक अरबी रिसाले का इंतखाब करके उसे उर्दू (फिर दुआओं के मुहताज इस बन्दे ने हिन्दी) में मुंतक़िल किया कि उसमें जिहादे–अफ़ग़ानिस्तान की ईमान पर तफसीलात के साथ–साथ बहुत से अहम इल्मी मौज़ूआत पर कुर्आन व हदीस की रोशनी में बहुत मुअस्सर तहक़ीक़ात सुपुर्दे–क़लम की गई हैं।

मुतर्जम, उर्दूख्वानों(व हिन्दी के लिये भी दुआ की दरख़्वास्त है।)की तरफ से बहुत दादो–तहसीन के मुस्तहिक़ हैं कि उन्होंने जिहाद से मुताल्लिक अपने वक़्त के एक बहुत बड़े मुजाहिद के ख़्यालात से लोगों को आगाही बख़्शी और इस सिलसिले के बहुत से सवालात व शुबहात के काफी व शाफ़ी जवाबात से बहरामंद किया।

फ़जज़ाहुल्लाहुल–अहसनुलजज़ाह फिद्दुनिया वल आख़िर,आमीन !

अल्ताफुर्रहमान बनवी,
उस्ताज़,जामिआ इम्दादुल उलूम,
जामा मस्जिद,दरवेश,पेशावर,सदर

मौलाना हाफ़िज़ साजिद अनवर,

दारूल उलूम तफहीमुल–इस्लाम, नौशहरा

بسم الله الرحمن الرحيم

इमाम अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम शहीद रह. की ये किताब **अद्दिफ़ाऊ अन आराज़ियल–मुस्लिमीना, अहम फुरूज़ुल आयान बअदल ईमान !** दरअसल उनका वोह फतवा है, जो उस वक़्त दिया गया था जब अफ़गानिस्तान में रूसी अफवाज घुस आई थीं। इस फतवे ने सुर्ख सैलाब(रूस)के आगे बन्द बांधने में अहम क़िरदार अदा किया। अल्लाह उनकी रूह को राज़ी कर दे कि ये आवाज़ इतनी मुअस्सर थी कि इसे सुनकर अ़रबो–अ़जम ने अपने जिगर के ग़ोशे इस जिहाद के सुपुर्द कर दिए। इन लफ्ज़ों का हक़ भी था कि ऐसा असर दिखाते कि इमाम अज़्ज़ाम रह. ने इस फतवे को अपनी क़लम की स्याही से नहीं, ख़ूने–जिगर से लिखा था। कुफ्र का आलमग़ीर शिकंजा ये कैसे बर्दाश्त कर सकता था कि ये क़्लम यूंहीं चलता रहे, ज़बान फहमे–दीन का क़र्ज़ चुकाती रहे और शै़खुल अज़्ज़ाम ब़ाबे–खुरासान(अफ़गानिस्तान के दरवाज़े)की चौखट पर खड़े आलमे–इस्लाम के जवानों को जोक़ दर जोक़ यहूदो–नसारा और मुश्रिकीन के दामने–फरेब से निकाल कर सरबुलन्दी व उरूज के मअ़रकों में उतारते रहें।वोह ताग़ूती निज़ामे–तालीम जिसने मिल्लते–इस्लामिया के नौजवानों का शाहाना(राजसी)तर्ज़े–ज़िंदगी का आदी बना दिया है, कपड़े–लत्ते का गुलाम बना छोड़ा है मग़रिबी कुफ्री तहज़ीब से मरऊब (भ्रमित) कर दिया है, ***शैख़ ने ऐसी हजारों, लाखों बेसिम्त जवानियों को अज़मत व अज़ीमत के रास्तों पर लगाया, ज़िल्लत की ज़िंदगी पर इज़्ज़त की मौत को तरजीह देने का दर्स और अबाबीलियों को हाथियों से टकराने का हौसला दिया। नतीजतन नील के साहिल से काशग़र तक और मग़रिब की वादियों से साईबेरिया व सिकियांग के बर्फफिस्तानों तक से मुजाहिदीन के ग़िरोह दर गिरोह अल्लाह के रास्ते में निकल खड़े हुए।***

ये सारा मंज़र आ़लमी कुफ्री निज़ाम के लिए नाक़ाबिले–बर्दाश्त था, चुनांचे **24 नवम्बर 1989 ई.** को पेशावर की एक मसरूफ शाहेराह अनदेखे हाथों शैख़ की गाड़ी धमाके से उड़ा दी गई, जाने वाले को वोह खज़ाना–ए–जावदां मिल गया जिसके लिए उसने पहले अपनी जाए–पैदाइश ***अर्ज़े–मुक़द्दस, फिलीस्तीन*** को छोड़ा, फिर बतौरे–मुअल्लिम जामिया उम्मुल्कुरा, मक्का और जवारे–काबा की मफारक़त(जुदाई) को बर्दाश्त किया, और फिर आख़िर में **बैनुलअक़्वामी इस्लामी यूनिवर्सिटी, इस्लामाबाद** को भी अलविदा कह दिया कि '**इल्म**' को जिस '**अमल**' की जुस्तजू थी उसका दर्जा क़ील व क़ाल की दुनिया से बहुत बुलंद था। ये जुमे का दिन था जिस रोज़ शैख़ अपने दोनों नौजवान बेटों के साथ, लहू से बावुज़ू और सुर्खरू होकर अपने रब के दरबार में पहुंचे। जान

वाले के जसद(बदन)से उठती हुई महक बज़बाने–हाल कह रही थी कि दरबारे–इलाही में इस लहू की क्या क़ीमत है?आज दुनिया में जहां भी इस फरीज़ा–ए–गुमग़श्ता(खोए व भूले हुए फ़र्ज़)की अदाएगी में मसरूफ लोग देखे जाते हैं तो उनके किरदार व अफ़कार में उसी **लहू की रोशनाई**(स्याही)झलकती नज़र आती है।

शहीद रह. ने अपने पीछे आहया–ए–जिहाद पर मबनी एक अज़ीमुश्शान इल्मी ज़खीरा छोड़ा जो उनके लिए इंशाअल्लाह सद्क़ा–ए–ज़ारिया रहेगा और मुसलमानों की आईदा नस्लें, इससे इल्म व हिकमत के मोती चुनती रहेंगी। शहीद की ये तारीख़ी किताब भी उसी**'अनमोल'ख़जाने का एक सुनहरा 'बाब'है** और मुझे ये बात कहने में कोई बाक (डर) नहीं कि ये किताब असरे–हाज़िर(आज के ज़माने) की अहमतरीन किताबों में से है क्योंकि इसमें जिस मसले पर गुफतगू की गई है वोह इस ज़माने में मुसलमानों को दरपेश अहमतरीन मसला है, यानी **''मुस्लिम सरज़मीनों पर काफ़िर अक़्वाम की चढ़ाई और क़ब्ज़ा''** और नतीजतन इस्लाम की ऐसी ज़बूंहाली कि बयान की ताब नहीं !

फिर ये किताब इस लिहाज़ से भी अहम है कि यह हर मुसलमान मर्द,औरत,बूढ़े व जवान को मुखातिब करती है, उसके सामने इस मसले का हल पेश करती है, और उसे याद दिलाती है कि ऐसी सूरते–हाल में ईमान लाने के बाद उसका अहमतरीन फर्ज़े–ऐन क्या है ? वह फर्ज़ जिसे न निभाने की सूरत में मुसलमान का ईमान दांव पर लग जाता है क्योंकि ***एक तरफ तो अल्लाह तबारक व तआला जिहाद से दूरी को मुनाफ़िक़ीन की सिफत क़रार देते हैं और दूसरी जानिब जिहाद से मुंह फेरने का नतीजा अमलन यही होता है कि मुसलमानों के इलाक़े कुफ्र के क़ब्ज़े में चले जाते हैं, फितना जड़ पकड़ लेता है, मुसलमान मग़लूब हो जाता है।*** शआईरे–दीन पर अ़मल पैरा होना मुश्किल हो जाता है और शिर्कवार तदाद(इस्लाम से पलटना)फैल जाता है। कुफ्र के इसी ग़लबे के तदारक(रोकथाम) के लिए,ऐसी सूरते–हाल में दिफाई जिहाद अहमतरीन फर्ज़े–ऐन बन जाता है। अज़्ज़ाम शहीद रह. ने इस मौज़ूअ पर शरई दलाईल को इस किताब में निहायत जामेअ और मुदल्लल अंदाज़ में इकट्ठा किया है।

मौजूदा हालात में जबकि पन्द्रहवी सदी हिजरी की सलीबी जंग अपने उरूज़ पर है, इस्लाम के बड़े–बड़े नामलेवा कुफ्र से मुदाहिनत(चापलूसी), मुसालिहमत (समझौते)और अ़दम–मुख़ासिमत(खुद चलाकर अमन के समझौते)का दर्स दे रहे हैं, *(पढ़िये,जामिया सलफ़िया,बनारस–हिन्दुस्तान,से दहशतगर्दी के खिलाफ़ सिर्फ कुर्आनो–सुन्नत के दाई होने का दावा करने वाली,जमिअत अहले–हदीस,का फ़तवा जिसमें साफ़ तौर पर कहा गया है कि दुनिया में इस वक़्त कहीं भी ऐन इस्लाम के मुआफ़िक़ो–मुताबिक़ जिहाद नहीं चल रहा है। अमेरिका यही चाहता है, उलम–ए–सू भी उसकी ही ज़बान में फ़तवों को क़लमबन्द कर रहे हैं। (मुतर्जिम))*

अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम शहीद की यह किताब एक मिनारा–ए–नूर है,जो बताती है कि मुसलमानों के दीन,जान,माल और इज़्ज़त पर अगर हमला हो जाए तो अव्वलन फर्ज़ क्या बनता है। बिलाशुबहा ये किताब यक़ीनन इस लायक़ है कि हमारी मौजूदा और आईंदा नस्लें इसको समझें और इसके तक़ाजों पर अमल करें। **उसे नई नस्ल के तालीमी निसाब में शामिल होना चाहिए, क्योंकि इसमें दिए गए दुरूस किसी भी मुसलमान से ग़ैर–मुताल्लिक़ नहीं हैं।**

अल्लाह तआला से दुआ है कि वोह इस किताब को जिहाद के ग़मगुश्ता फरीज़े के आह्या का ज़रिया बनाए और हमें उम्मते–इस्लाम की दिफाअ के लिए उठने वालों में शामिल फरमाए। क्योंकि वक़्त का ये अहमतरीन फरीज़ा अगर निभाया न जा सका, तो फिर ... ये जान व माल किस काम के ?

हाफिज़ साजिद अनवर
(मुदीर, दारूल उलूम तफहीमुल–इस्लाम, नौशहरा)

फतवे की ताईद में आलमे–इस्लाम के बाज़ दीग़र उलम–ए–किराम की तहरीरें !

शैख़ मुहम्मद नजीब का ख़त

शुरू करता हूं अल्लाह के नाम से जो रहमान और रहीम है, तमाम तारीफ़ें अल्लाह ही के लिए हैं। अल्लाह की सलामती और बरकतें हों रसूले–अकरम(ﷺ)पर, उनके घर वालों पर, उनके साथियों पर और तमाम उन लोगों पर जो उनकी राह पर चले।

अल्लाह की राह में जिहाद का मक़सद शहादत को पाना है। जिसके बारे में अल्लाह ने अपने कलाम में फ़र्माया ***"ताकि अल्लाह तुममें से शहीद ले सके"*** **(3:160)** ये एक जहान से दूसरी जहान की तरफ जाना है। ***एक परेशानी वाली, बेइंसाफ़ दुनिया से एक खुशी और सुकून वाली दुनिया की तरफ़।***

जिहाद के मौजूअ् पर हमारे मुजाहिद शैख अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम ने लिखा। ***फ़िक़ह, हदीस और तफ्सीर से दलाइल दिए।*** जो कि मुखालिफ़ों के लिए तकलीफ़देह, कायरों और मुनाफ़िक़ों की आंख में किरकिरी है और उन्होंने साबित किया कि इस नाजुक घड़ी में उम्मत के कैंसर को ठीक करने के लिए इसके सिवा कोई रास्ता नहीं है। ज़िन्दगी का यही मक़सद है कि ये अल्लाह और उसके रसूल(ﷺ) की इताअ़त में बसर की जाए ताकि उम्मत वापस अपना वक़ार पा सके।

ईमान वाला अल्लाह की राह में जिहाद करता है **अगर** वोह ***गिरता*** है तो ***सीखता*** है **अगर** ***ज़ख्मी*** होता है तो उसके ***गुनाह माफ़*** होते है **अगर** उसे ***निकाला*** जाता है तो वोह एक ***मुसाफ़िर*** है और **अगर** उसको ***क़ैद*** किया जाता है तो वोह ***आबिद*** है **अगर** ***ज़िन्दा*** रहता है तो वोह ***गाज़ी*** है **अगर** ***मरता है*** तो ***शहीद है*** और उसके लिए बहुत से ख़ैर और भी हैं।

सलामती हो उस पर जिसने इस दावत को सुना और लब्बैक कहा।

शैख़ मुहम्मद नजीब

शैख़ अब्दुल्लाह नसाह अल वान का ख़त

सब तारीफ़ अल्लाह ही के लिए हैं और अल्लाह की रहमतें और बरकतें हों मुहम्मद(ﷺ)पर उनके घर वालों पर और उनके साथियों पर और उन लोगों पर जिन्होंने जिहाद के अलम को पूरी दुनिया में उठाया हुआ है और जो नेकी की तरफ बुलाते हैं और बुराई से रोकते हैं। **शैख अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम ने जो फ़त्वा मुझे दिखाया, वोह सही है** और यही मुअकफ़ था हमारे अस्लाफ़ और चारों मज़हब के इमामों का और दीगर अहले-इल्म का कि *"अगर किसी इस्लामी रियासत पर काफ़िर कब्ज़ा कर लें तो जिहाद फ़र्जे-ऐन हो जाता है उसके लोगों पर, तो बीवी अपने शौहर की इजाज़त के बिना और लड़का अपने वालिदैन की इजाज़त के बिना और गुलाम अपने मालिक की इजाज़त के बिना जिहाद के लिए निकलेगा और जिहाद हर नजदीकी मुल्क पर फ़र्ज़ रहेगा यहां तक कि उनमें इतनी ताक़त हो कि मुस्लिम रियासत को आजाद करा सकें और अगर उनके पास इतनी ताक़त नहीं कि काफ़िरों को शिकस्त दे सकें तो ये फरीज़ा आस-पास के मुस्लिम मुल्कों पर आइद होगा यहां तक कि जिहाद पूरी ज़मीन पर फ़र्ज़े ऐन हो जाता है।'*

तो, आज हर मुसलमान पर ये फ़र्ज़ है कि वो *हथियार उठाए* और अपने भाईयों की मदद के लिए फ़िलिस्तीन और अफ़गानिस्तान या हर वो जगह जहां पर उसकी जरूरत है,जाए और इसके लिए उसको अपने वालदैन से इजाज़त लेने की कोई ज़रूरत नहीं। वल्लाहू-अअलम।

शैख़ अब्दुल्लाह नसाह अल वान

शैख़ उमर सैफ़ की राय

بسم الله الرحمن الرحيم

अलहम्दुलिल्लाहि व सल्लललाहू अला सय्यिदिना मुहम्मदन व आलिही व असहाबिही व मन व आला,वबअद,अखीफ़िल्लाह,शैख़े–फाज़िल,मुजाहिदे–सादिक़, दुकतूर अ़ब्दुल्लाह अज़्ज़ाम ने जिहाद के शरई हुक्म और इसके फर्ज़े–ऐन होने से मुताल्लिक ये अज़ीम फतवा,ये क़ीमती नसीहत मुझे दिखाई है मैंने ये पूरा फतवा पढ़ा है और इसे बिल्कुल दुरूस्त और ऐ़न मुताबिक हक़ पाया है। **यक़ीनन इससे नज़रें चुराने की कोई गुंजाईश नहीं और जिस शख़्स के दिल में ज़र्रा बराबर भी ईमान होगा वह किताबुल्लाह, सुन्नते–रसूल (ﷺ) और इजम–ए–उलमा के इन दलाइल के सामने सरे–तसलीम ख़म कर देगा।** मेरी राए यही है कि इस वक़्त जिहाद की फर्ज़ियत को मानना, उसकी अदाएगी के लिए घरों से निकलना और एक–दूसरे से बढ़–चढ़कर जिहाद में शिरकत करना ही तकाज़–ए–ईमान है और ऐसा करने से सिर्फ उसी तरह के लोग रूकेंगे, जिन के बारे में अल्लाह तआ़ला ने फरमा दिया था :

فَإِذَا أُنزِلَتْ سُورَةٌ مُّحْكَمَةٌ وَذُكِرَ فِيهَا الْقِتَالُ رَأَيْتَ الَّذِينَ فِي قُلُوبِهِم مَّرَضٌ يَنظُرُونَ إِلَيْكَ نَظَرَ الْمَغْشِيِّ عَلَيْهِ مِنَ الْمَوْتِ **(20)**

"मगर जब एक साफ–साफ मज़मून वाली सूरत नाज़िल कर दी गई जिसमें क़िताल का ज़िक्र था तो तुमने देखा कि जिन लोगों के दिलों में बीमारी थी वो तुम्हारी तरफ इस तरह देख रहे हैं जैसे किसी पर मौत की बेहोशी तारी हो।"

(सूर : मुहम्मद 20)

यक़ीनन अ़ज़मतों वाले अल्लाह ने सच फर्माया ! अल्लाह तआ़ला शैख़ अ़ब्दुल्लाह अज़्ज़ाम शहीद को, उनकी हुस्ने–नीयत और बरवक़्त इक़्दाम पर बेहतरीन जज़ा दे और हम सबको अपनी रज़ा वाली राह इख्तियार करने की तौफ़ीक दे। बिलाशुब्हा जिहाद आज फर्ज़े–ऐन है और किसी को इससे पीछे रहने की इजाज़त नहीं।

अलफक़ीर इलल्लाह,

उमर सैफ़

(28-12-1404, हिजरी, जिद्दाह)

(मजलिसे–किबारूल उलमा, सनाअ, यमन)

بسم الله الرحمن الرحيم

कुछ साहिबे–किताब के बारे में
(अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम शहीद रह.)

अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम की सीरत :– अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम की पैदाईश उत्तरी फिलिस्तीन के जिनीन जिले के एक गांव **सेलात अल हरिसिया में 1941** को हुई। उनके वालिद का नाम मुस्तफा अज़्ज़ाम था। जिनका इंतकाल अपने बेटे की शहादत के1 साल बाद हुआ और उनकी वालिदा का नाम जकिया सालेह था। जिनका इंतकाल अपने बेटे की शहादत के एक साल पहले हुआ। इन्हे पाबी कैंप में दफनाया गया था।

अज़्ज़ाम परिवार एक माअरूफ परिवार था। जिसके एक फर्द का नाम अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम था। एकज़हीन बच्चा जिसने इस्लामी दावत का काम बचपन से ही शुरू कर दिया था। उस्तादों ने उनकी काबिलीयत को इब्तदाई स्कूली मरहले में ही जान लिया था। उनके साथी उन्हें उनके ग्रुप का एक नेक बच्चा शुमार करते थे। वोह अपने मजबूत इरादों पुख्ता–मिजाज के लिए जाने जाते थे।

शेख अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम ने अपनी इब्तदाई और दर्मियानी तालीम अपने गांव में हासिल की, और आगे की तालीम **खुदरी कृषि कॉलेज** से ली। जहां उन्होंने डिप्लोमा की डिग्री ली। हालांकि वोह अपने साथियों में सबसे छोटे थे मगर सबसे तेज और होशियार थे। ख़ुदरी कॉलेज से स्नातक की डिग्री लेने के बाद उन्होंने दक्षिणी जॉर्डन के एक गांव में टीचर की नौकरी की। बाद में उन्होंने दमिश्क विश्वविद्यालय,सिरिया के शरिया कॉलेज में दाखिला लिया। जहां पर उन्होंने शरियत में बी.ए. की 1966 में डिग्री हासिल की। जब यहूदियों ने वेस्ट बैंक (गाज़ा) पर 1967 में कब्जा कर लिया तो अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम ने जार्डन से हिजरत करने का इरादा किया। क्योंकि वो यहूदियों के कब्जे वाले फिलिस्तीन में नहीं रह सकते थे। फिलिस्तीन की मुक़द्दस ज़मीन पर इस्राइली टैंको के बिना रोक–टोक के आने जाने में उनके हिजरत करने के इरादे को और मजबूत किया ताकि वो जंग करने के तौर तरीके सीख सकें। 1960 के आखिर में उन्होंने जॉर्डन से फिलिस्तीन पर इस्राइली कब्जे के खिलाफ होने वाले जिहाद में शिर्कत की। उसी दौरान उन्होंने **अलअज़हर यूनिवर्सिटी,मिस्र** से शरियत में एम.ए.की डिग्री हासिल की।1970 में जब जिहाद रूक गया और पीएलओ,जॉर्डन से निकाल दिया गया तब उन्होंने अम्मान की यूनिवर्सिटी में बतौरे–उस्ताज़ काम करना शुरू कर दिया।1971 में उन्हें अलअज़हर यूनिवर्सीटी से स्कॉलरशिप मिली। जिससे उन्होंने 1973 में उसूले–फ़िक्ह में पी.एच.डी. की डिग्री हासिल की। मिश्र में ही रहने के दौरान उनकी मुलाकात सय्यद कुतुब के खानदान वालों से हुई।

1979 में उन्हें यूनिवर्सिटी से निकाल दिया गया और वहाँ से वोह पाकिस्तान

चले गए,ताकि अफगान जिहाद के करीब रह सकें। वहां पर उनकी मुलाकात अफगान जिहाद के कई बडे मुजाहिदीन से हुई। पाकिस्तान में शुरूआती दिनों के क़याम में उन्होंने इस्लामाबाद की **इस्लामिक यूनिवर्सिटी** में बहैसियत उस्ताज़ काम किया। मगर बाद में उन्होंने उस्ताज़ के पद से इस्तीफा दे दिया। ताकि वो अपना पूरा वक़्त और ताकत अफगान जिहाद में लगा सकें।

अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम अफगानिस्तान के जिहाद से बहुत मुतास्सिर हुए और जिहाद पर उनके भी बहुत असरात हुए। यहां तक कि उन्होंने अपनी पूरी कोशिशें इसमें लगा दीं और यहाँ वोह अफगान जिहाद के एक बड़े काईद बनकर उभरे। उन्होंने अफगान जिहाद की तब्लीग़ में कोई कसर नही छोड़ी और इसे पूरी दुनिया में बिलखुसूस,मुस्लिम उम्मत में फैलाया। उन्होंने अफगान जिहाद के बारे में लोगों के ज़हन बदले और बताया कि ये जिहाद इस्लाम के लिए है और इसके मुजाहिदीन दुनिया के सारे मुसलमानों की फिक्र रखते हैं। उन्हीं की कोशिशों से अफगान जिहाद दुनिया भर में फैला और दुनिया के हर कौने से मुसलमान अफगानिस्तान लड़ने पहुंचे।

अफगानिस्तान के जिहाद ने अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम को इस दौर की जिहादी तहरीकों का सबसे अहम काइद बनाया। उन्होंने जिहाद में हिस्सा लेकर उनकी तब्लीग करके और जिहाद के बारे में जो गलतफहमियाँ थीं,उन्हें दूर करके वो आने वाली नई नस्लों के लिए एक मिसाल बन गए और उन्होंने ***एक बार कहा था मुझे लगता है कि मैं 9 साल का हूं। साढ़े सात साल मेरी ज़िंदगी के अफगान जिहाद में गुज़रे और ड़ेढ़ साल फिलिस्तीन के जिहाद में और मेरी बाकी की उम्र की कोई हैसियत नहीं।*** 24 नवम्बर1990 पेशावर में जुमे के दिन वोह अपने दो बेटों मुहम्मद और इब्राहीम के साथ जुमे की नमाज़ पढ़ने जा रहे थे, उसी वक्त उनकी कार को 20 किलो टी.एन.टी.से उड़ा दिया गया। कार के परखच्चे उड़ गए। उनके बेटों के जिस्म के टुकड़े कई 100 मीटर दूर पाए गए। एक बेटे की टांग टेलिफोन के तारों पर लटकी पाई गई। मगर अल्लाह के फ़ज़्लो–करम से शैख़ का बदन ज्यों का त्यों रहा और दिमाग में अन्दरूनी चोट की वजह से उनकी मौत हो गई। मुशाहिदीन(देखने वाले) गवाह हैं कि कई लोगों ने मुश्क की खुश्बु जो उनके बदन से आ रही थी,को उस वक़्त महसूस किया। शैख़ अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम को पावी के क़ब्रिस्तान में दफनाया गया जहां पर बहुत से शुहदा–ए–खुरासान की क़ब्रें है।

وَالَّذِينَ قُتِلُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ فَلَن يُضِلَّ أَعْمَالَهُمْ **(4)**

"और जो अल्लाह की राह में मारे गए अल्लाह उनके आमालों को हर्गिज जाया नही करेगा। (सूर : मुहम्मद 4)

मुक़द्दमा–ए–किताब

अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम (शहीद रह.)

बेशक तमाम तारीफें अल्लाह तआला के लिए हैं। हम उसी की हम्द बयान करते हैं,उसी से मदद मांगते हैं, उसी से मग़फिरत तलब करते हैं और उसी के हुज़ूर तौबा करते हैं। अपने नफ्स की शरारतों और आमाल की बुराईयों से अल्लाह की पनाह मांगते हैं। जिसे अल्लाह हिदायत दे उसे कोई भटकाने वाला नहीं और जिसे वोह गुमराह कर दे उसे कोई राह पर लगाने वाला नहीं। मैं इस बात की शहादत देता हूं कि अल्लाह के सिवा कोई इलाह नहीं,वह अकेला है,उसका कोई शरीक नहीं। और मैं गवाही देता हूं कि मुहम्मद (ﷺ) उसके बन्दे और रसूल हैं। ऐ अल्लाह ! काम वही आसान है जिसे आप आसान फरमा दें और अगर आप चाहें तो ग़म सहना भी आसान हो जाए।

खिलाफत बाकी नही रही, 1300 साल की इस्लामी हुकूमत के बाद एक अज़ीम साम्राज्य जिससे दुनिया कभी डरती थी। वोह लोग जिन्हें अल्लाह का आख़िरी पैगाम मिला। वोह दीन जो सारे जहान वालों के लिए था। वोह आज कहां है? नजासून (नजिस,नापाक–यह दो तरह के होते हैं,एक रूहानी व दूसरे जिस्मानी। जिस्मानी नजासत से तो हर इन्सान का साबिका पड़ता है, मगर रूहानी नजासत यहूदो–नसारा व मुशरिकीन के साथ ख़ास है) ने मुसलमान को धोखा देने के लिए हर जगह कठपुतली सरकारें बिठा दीं। साम्राज्यवाद ने नया चेहरा बदल लिया और उन्होंने मुसलमानों को इस तरह बाटाँ जैसे दावत में लोग खाना अपने खास लोगों के बीच बाँटते हैं। इससे बड़ी जिल्लत उन लोगों के लिए और क्या हो सकती थी जो इन्सानियत को बचाने के लिए पैदा किए गए थे, उन्हीं को लुक्म–ए–तर समझकर खाया जा रहा था। उम्मते–मुस्लिम किस तरह हालात के नाजुकपन को समझेंगे कि उनके घरों को तोड़ा जा रहा है और उनके पड़ौसी हंस रहे हैं और फिर एक बार कहूंगा लोग किस तरह हालात के नाजुकपने को समझेंगे।

وَالَّذِينَ كَفَرُوا بَعْضُهُمْ أَوْلِيَاءُ بَعْضٍ إِلَّا تَفْعَلُوهُ تَكُن فِتْنَةٌ فِي الْأَرْضِ وَفَسَادٌ كَبِيرٌ (73)

और काफ़िर एक दूसरे के मददगार और साथी हैं (पस, याद रखो!) अगर तुम उन (मुसलमानों) की मदद न करोगे तो मुल्क में एक (बहुत बड़ा) फ़ित्ना और बहुत बड़ा फ़साद खड़ा हो जाएगा। (तर्जुमा – सूर अनफाल, आयत 73)

أَجَعَلْتُمْ سِقَايَةَ الْحَاجِّ وَعِمَارَةَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ كَمَنْ آمَنَ بِاللَّهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ وَجَاهَدَ فِي سَبِيلِ اللَّهِ لَا يَسْتَوُونَ عِنْدَ اللَّهِ وَاللَّهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الظَّالِمِينَ (19) الَّذِينَ آمَنُوا وَهَاجَرُوا وَجَاهَدُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ بِأَمْوَالِهِمْ وَأَنْفُسِهِمْ أَعْظَمُ دَرَجَةً عِنْدَ اللَّهِ وَأُولَئِكَ هُمُ الْفَائِزُونَ (20) يُبَشِّرُهُمْ رَبُّهُمْ بِرَحْمَةٍ مِنْهُ وَرِضْوَانٍ وَجَنَّاتٍ لَهُمْ فِيهَا نَعِيمٌ مُقِيمٌ (21) خَالِدِينَ فِيهَا أَبَدًا إِنَّ اللَّهَ عِنْدَهُ أَجْرٌ عَظِيمٌ (22)

क्या तुमने हाजियों को पानी पिलाना और मस्जिदे–हराम को आबाद करना उस शख़्स के अमल जैसा समझ लिया है जो अल्लाह और यौमे–आख़िरत पर ईमान रखता है और अल्लाह की राह में जिहाद करता है? अल्लाह के नज़दीक तो यह लोग बराबर नहीं हैं। और अल्लाह ज़ालिम लोगों को हिदायत नहीं दिया करता। जो लोग ईमान लाए और हिजरत की राह में जानो–माल से जिहाद करते रहे, अल्लाह के यहां तो उन्हीं का दर्जा बड़ा है, और यही लोग कामयाब हैं। उनका रब उन्हें अपनी रहमत और खुशनूदी और ऐसी जन्नतों की बशारत देता है जहां उनके लिये दाईमी नेअमतें होंगी, उनमें यह हमेशा रहेंगे, बेशक अल्लाह के पास बड़ा अज्र है।

(सूर : तौबा आयत 19–22)

अब्दुल्लाह इब्ने मुबारक रह. ने फुजैल इब्ने अयाद को खत में लिखा ''ऐ हरम में इबादत करने वाले अगर तू हमारे साथ जंगों (जिहाद) में शिर्क़त करता तो तू जान लेता कि जिहाद के मुकाबले में तेरी इबादत बच्चों जैसी है।(यानी बहुत मामूली है) तूने जो भी आंसू इस इबादत में बहाए हैं, हमने उसकी जगह खून के कतरे बहाए हैं। तुम आबिद अपनी ये इबादत करके इबादत का मज़ाक उड़ा रहे हो। जबकि मुजाहिदीन अपनी जान और माल कुर्बान कर रहे हैं। .

खैर, मैंने असलन जब ये फतवा लिखा था तो ये अपने मौजूदा हज्म(बहुत बड़े मक़सद) से कहीं बड़ा था। फिर मैंने उसे **फज़ीलतुश्शैख अब्दुल अज़ीज़ बिन बाज़ (रह.)** के सामने पेश किया और उन्हें पढ़कर सुनाया। ***आपने उसे पसन्द किया, इसकी ताईद की और कहा कि 'यक़ीनन ये उम्दा है।'*** लेकिन उनकी राय ये थी कि मैं इसे कुछ मुख़्तसर कर दूं, वोह खुद इसका मुक़द्दमा लिखें और फिर उसे छपवा दिया जाए। चुनांचे मैंने इसे मुख़्तसर किया, मगर फिर हज के अय्याम आ गए और शेख इब्ने–बाज़ मसरूफ रहे और अल्लाह का करना कुछ ऐसा हुआ कि ये फतवा दोबारा आपको दिखाने का मौक़ा न मिल सका। बाद में शेख़ इब्ने–बाज़ हफीज़उल्लाह ने जिद्दाह की **मस्जिदे–बिन लादेन**

और रियाज़ की जामा मस्जिद अल्कबीर में ये फतवा दिया कि *आज अपनी जानों के साथ जिहाद में शिरकत फर्ज़े–ऐन है।*

फिर मैंने ये फतवा आख़िर में दिए गए छः ईज़ाफी सवालों के बग़ैर, ज्यों का त्यों क़ाबिले–अहतराम शुयूख़ **अब्दुल्लाह अलवान, सईद हवा, मुहम्मद नजीब अल मतीई, दुक्तूर हुसैन हामिद हस्सान और उमर सैफ** के सामने भी पेश किया और उन्हें पढ़कर सुनाया। उन सब अहले–इल्म ने उस फतवे से इत्तिफाक़ किया और बेशतर ने इस पर दस्तख़त भी कर दिए। इसी तरह मैंने **शैख़ मुहम्मद बिन सालेह बिन उसैमीन** को भी ये फतवा पढ़कर सुनाया और **आपने भी इस पर अपने दस्तखत कर दिए**। नीज़, मुहतरम **शैख़ अब्दुर्रज़्ज़ाक़ अफीफी, शैख़ हसन अय्यूब और दुक्तूर अहमद अस्साल** ने भी ऐसे ही फत्वे दिए।

फिर मैंने हज के अय्याम में मीना में वाक़ेअ **मर्कज़,अत्तोइयतुल आअम्मा** में ख़िताब किया,जहां पूरी इस्लामी दुनिया से तअल्लुक रखने वाले **एक सौ से ज़्यादा उलमा** को इसी फतवे का खुलासा सुनाते हुए मैंने कहा :

''तमाम सलफ व ख़लफ और इस्लामी तारीख़ के हर दौर में तमाम फुक़हा और मुहद्दिसीन इस बात पर मुत्ताफिक रहे हैं कि :

अगर मुसलमानों की सरज़मीन के किसी गज़ भर हिस्से पर भी हमला हो, तो जिहाद हर मुसलमान मर्द व औरत पर फर्ज़े–ऐन हो जाता है। ऐसी सूरत में बेटा बाप की और औरत, शौहर की इजाज़त के बग़ैर निकलेंगे।''

फिर मैंने उनसे ये भी कहा कि मैं गुज़िश्ता तीन सालों से जिहादे–अफ़ग़ानिस्तान में शरीक हूं और अपने तजुर्बात और मुजाहिदीन के अमराअ की आराअ(अमीरों के राय–मश्विरों) की रोशनी में पूरे वसूक़ से ये बात कहता हूं कि जिहादे–अफ़ग़ानिस्तान को आज मर्दानिकार की ज़रूरत है। बस! ऐ उल–ए–किराम ! आप में से किसी को भी अगर इस राय पर कोई ऐतराज़ है तो बताएं?

किसी एक आलिम ने भी कोई ऐतराज़ नहीं किया,बल्कि **दुक्तूर इदरीस** ने ये कहा कि ''*मेरे भाई ! इस मसले में किसी को कोई इख़्तिलाफ नहीं।*'' चुनांचे,उलमा की उस भरपूर ताईद के बाद मैंने ये फतवा छपवाया है ताकि अल्लाह इसे हमारे लिए दोनों जहानों में नफे का बाइस बनाए और तमाम मुसलमानों को इससे फाएदा पहुंचाए।

अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम (शहीद रह.)

(बाब अव्वल) (पहला अध्याय)

हमलावर दुश्मन को मुसलमानों की सरज़मीन से निकालना अहमतरीन फर्ज़

बेशक तमाम तारीफें अल्लाह तआला के लिए हैं। हम उसी की हम्द बयान करते हैं, उसी से मदद मांगते हैं, उसी से मग़फ़िरत तलब करते हैं और उसी के हुजूर तौबा करते हैं। अपने नफ्स की शरारतों और आमाल की बुराईयों से अल्लाह की पनाह मांगते हैं। जिसे अल्लाह हिदायत दे उसे कोई भटकाने वाला नहीं और जिसे वोह गुमराह कर दे उसे कोई राह पर लगाने वाला नहीं। मैं इस बात की शहादत देता हूं कि अल्लाह के सिवा कोई इलाह नहीं, वोह अकेला है, उसका कोई शरीक नहीं और मैं ग़वाही देता हूं कि मुहम्मद (ﷺ) उसके बन्दे और रसूल हैं। दरूदो-सलाम हों आप(ﷺ)पर, आप(ﷺ)की आल पर और आप(ﷺ)के तमाम अस्हाब रज़ियल्लाहु अन्हुम पर। अम्माबअ़द,

ये अल्लाह तआला की खास रहमत है कि उसने हमारे लिए इस्लाम को बतौरे-दीन चुना,उसे तमाम जहानों के लिए बाइसे-रहमत बनाया,और सय्यिदुलमुर्सलीन (ﷺ) को इसके हमराह खातमुन्नबीय्यीन बनाकर भेजा। फिर जब आप (ﷺ) दलाइल व बराहीन (दलीलों व अमली कोशिशों) से इस दीन की हक़्क़ानियत वाज़ेह फरमा चुके तो अल्लाह तआला ने तेग़ो-सना(तीरो-तलवार)से इस दीन की नुसरत फरमाई। इमाम अहमद रह. और तबरानी रह. एक सहीह हदीस में रसूलल्लाह (ﷺ) का ये फर्मान नक़ल करते हैं :

"मुझे क़यामत तक के लिए तलवार के साथ मबउस किया गया है, यहां तक कि अल्लाह वहदहू लाशरीक की इबादत की जाने लगे और मेरा रिज़्क मेरे नेज़े के साए तले रखा गया है और जिसने भी मेरे अम्र (तरीक़े)की मुख़ालिफत की,उसके लिए ज़िल्लत और पस्ती रख दी गई है और जिसने किसी क़ौम की मुशाबिहत इख़्तियार की वह उन्हीं में से है।"

(सहीहुल जामेअ-अस्सग़ीर लिल्अल्बानी-2828)

ज़मीन की इस्लाह का दारोमदार ''क़ानूने–दिफाअ्'' पर रखा गया है।

अल्लाह हकीम व अ़लीम ने ज़मीन की इस्लाह का दारोमदार 'क़ानूने–दिफाअ़' पर रखा है, जिसका ज़िक्र कुर्आन इन अल्फाज़ में करता है :

وَلَوْلَا دَفْعُ اللَّهِ النَّاسَ بَعْضَهُمْ بِبَعْضٍ لَّفَسَدَتِ الْأَرْضُ وَلَـٰكِنَّ اللَّهَ ذُو فَضْلٍ عَلَى الْعَالَمِينَ (251)

''और अगर अल्लाह इन्सानों के एक गिरोह को दूसरे गिरोह के ज़रिए दिफाअ़ न करता रहता तो ज़मीन फसाद से भर जाती, लेकिन अल्लाह अहले–आ़लम पर बड़ा मेहरबान है।'' (सूर : अलबक़रा–251)

ये बनी नूअ इन्सान पर अल्लाह की खुसूसी मेहरबानी है कि उसने उनके लिए दफ़ओ–फ़साद(फ़साद के ख़ात्मे) का ये क़ानून जारी फर्माया और उसे हमारे लिए अपनी पाक किताब में बयान भी कर दिया है। ये''क़ानूने–दिफाअ़'' दरअसल हक़ो–बातिल की कश्मकश ही का दूसरा नाम है। तमाम इन्सानियत की भलाई इसी मअ़रके से वाबास्ता है। हक़ की फरमारवाई और क़यादत इसी के ज़रिए क़ायम होती है और दुनिया में ख़ैर फैलाने का ज़रिया भी यही है। दीनी शआइर(निशानियां)और इबादतगाहें भी इसी की बदौलत महफूज़ हैं। इर्शादे–बारी–तआ़ला है :

وَلَـوْلَا دَفْعُ اللَّهِ النَّاسَ بَعْضَهُم بِبَعْضٍ لَّهُدِّمَتْ صَوَامِعُ وَبِيَعٌ وَصَلَوَاتٌ وَمَسَاجِدُ يُذْكَرُ فِيهَا اسْمُ اللَّهِ كَثِيراً وَلَيَنصُرَنَّ اللَّهُ مَن يَنصُرُهُ إِنَّ اللَّهَ لَقَوِيٌّ عَزِيزٌ (40)

''और अगर अल्लाह इन्सानों के एक गिरोह को दूसरे गिरोह के ज़रिए दिफाअ़ न करता रहता तो(नसारा के) ख़लवतख़ाने और गिर्जे और (यहूद) के मअबद (इबादतखाने)और (मुसलमानों की) वोह मस्जिदें, जिनमें अल्लाह का नाम कसरत से लिया जाता है, सब मुन्हदम (ख़त्म)हो गए होते और जो अल्लाह की मदद करेगा, अल्लाह भी ज़रूर उसकी मदद करेगा। बेशक अल्लाह कुव्वतवाला और ग़ल्बेवाला है।'' (सूर : हज :40)

किताबुल्लाह के बेशुमार सफ्हात इस 'क़ानूने–दिफाअ़' या 'क़ानूने–जिहाद' की तफसीलात पर मुश्तमिल हैं, ताकि इस बारे में कोई इब्हाम (शक) बाक़ी न रहे कि हक़ के पास

अपने दिफ़ाअ के लिए कुव्वत का होना एक नागुज़ीर अम्र है। ये एक तारीख़ी हक़ीक़त है कि कितनी ही बार हक़ सिर्फ इस वजह से पस्त और मग़लूब हुआ कि हक़वाले उसका साथ छोड़ गए और कितनी ही मर्तबा बातिल,बातिलवालोंकी हिमायत और कुर्बानियों की ॱॱॱॱ सरबुलन्द हो गया।

जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह की ईमारत के दो बुनियादी सुतून

जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह की इमारत दो बुनियादी सुतूनों पर कायम होती है :

1. **सब्र,** जो दरअसल क़ल्ब व रूह की शुजाअत का मज़हर है।
2. **सख़ावत,** जो अल्लाह की राह में जिस्म व जान लगा देने का दूसरा नाम है। (और बेशक जान कुर्बान करने से बढ़कर सख़ावत और क्या हो सकती है?)

ईमाम अहमद रह. एक सहीह हदीस में रिवायत करते हैं :

"ईमान सब्र व सख़ावत का नाम है।"

(सिलसिलतुल–अहादीस, अस्सहीह लिल,अलबानी–554)

हाफ़िज़ इब्ने–तैमिया रह. फर्माते हैं :

"चूंकि बनी नूअ इन्सान के दीन व दुनिया, दोनों की भलाई शुजाअत व सख़ावत के बग़ैर नामुमकिन है, इसलिए अल्लाह तआला ने ये बात वाज़ेह फरमा दी है कि जो कोई भी जिहाद में जान खपाने से हाथ खींचेगा,अल्लाह तआला उसे हटाकर किसी ऐसे को उसकी जगह ले आएंगे जो इस फरीज़े को अदा करता हो,चुनांचे,अल्लाह तआला का इर्शाद है:

إِلَّا تَنفِرُوا يُعَذِّبْكُمْ عَذَابًا أَلِيمًا وَيَسْتَبْدِلْ قَوْمًا غَيْرَكُمْ وَلَا تَضُرُّوهُ

شَيْئًا وَاللَّهُ عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ (39)

"अगर तुम न निकले तो अल्लाह तुम्हें दर्दनाक अज़ाब देगा और तुम्हारी जगह किसी और गिरोह को ले आएगा और तुम उसे कुछ नुकसान न पहुंचा सकोगे और यक़ीनन अल्लाह हर शै पर क़ादिर है।" (सूर : तौबा : 39)

(मजमूअ–अल फ़तावा,जिल्द–28,सफ़ा–157)

दो बदतरीन सिफ़ात

जान व माल खपाने की इसी अहमियत के पेशेनज़र रसूलल्लाह (ﷺ) ने बुख़्ल और बुज़दिली को(जो सख़ावत और शुजाअत की ज़िद(उलट)हैं) बदतरीन सिफात क़रार दिया है,क्योंकि ये अफराद के बिगाड़ और मुआशरों की तबाही का बाइस बनती है। रसूलुल्लाह (ﷺ) फरमाते हैं :

"दो बदतरीन सिफात जो किसी इन्सान को हो सकती है वोह हैं शदीद बुख़्ल और सख़्त बुज़दिली।"(अबूदाऊद किताबुल–जिहाद, सनद सही)

मुसलमानों की तवील तारीख़ इस बात पर शाहिद है कि हमारे सल्फे–सालेहीन जिहाद के इसी इलाही क़ानून पर अमल पैरा रहे। नतीजतन अल्लाह ने दुनिया की क़यादत का ताज़ उन्हीं के सिर पर रखा और इन्सानियत की रहनुमाई भी उन्हीं के नसीब में आई। अल्लाह तआला फर्माते हैं :

وَجَعَلْنَا مِنْهُمْ أَئِمَّةً يَهْدُونَ بِأَمْرِنَا لَمَّا صَبَرُوا وَكَانُوا بِآيَاتِنَا يُوقِنُونَ (24)

"और जब उन्होंने सब्र किया और हमारी आयत पर यक़ीन लाते रहे तो हमने उनके अन्दर ऐसे पेशवा पैदा कर दिए जो हमारे हुक्म से रहनुमाई करते थे"

(सूर : सज्दा : 24)

इसी तरह एक सहीह हदीस में है कि रसूलल्लाह (ﷺ) ने फर्माया :

"इस उम्मत का पहला हिस्सा जुहद (दुनिया से बेरग़बती) और यक़ीन की वजह से दुरूस्त था और इसका आखिरी हिस्सा बुख़्ल (कंजूसी) और (लम्बी–चौड़ी) तमन्नाओं की वजह से हलाक होगा।"

(अहमद, तबरानी, फ़िल अवसत लि बैहक़ी, सहीहुल जामेअ अस्सग़ीर-3845)

अस्लाफ के उस सुनहरी दौर के बाद मुसलमानों की जो नस्लें आई वो क़वानीने–इलाही को छोड़ बैठे। उन लोगों ने अल्लाह को भुलाया तो अल्लाह ने भी उन्हें भुला दिया और उन्होंने अहकामाते–शरियत की नाक़दरी की तो वह खुद भी बेवक़अत होकर रह गए

فَخَلَفَ مِن بَعْدِهِمْ خَلْفٌ أَضَاعُوا الصَّلَاةَ وَاتَّبَعُوا الشَّهَوَاتِ

فَسَوْفَ يَلْقَوْنَ غَيًّا (59)

"फिर अगली नस्लों के बाद ऐसे नाख़ल्फ उनके जानशीन हुए कि उन्होंने

नमाज़ ज़ाए कर दी और नफ्सानी ख़्वाहिशात के पीछे पड़ गए, सो वोह अनक़रीब नुक़सान उठाऐंगे।'' (सूर : मरयम : 59)

उनकी बदआमालियां उनके लिए खुशनुमा बना दी गई और ख़्वाहिशात की पैरवी ही उनका तरीक़–ए–ज़िंदगी बन गया। रसूले–अकरम (ﷺ) इर्शाद फर्माते हैं :

''यक़ीनन अल्लाह तआला नफरत करते हैं हर ऐसे शख़्स से जो अक्खड़ मिज़ाज़ मुतकब्बिर हो, (खा–खाकर) जिसका जिस्म फूल चुका हो, बाज़ारों में फिजूल बातें करते जिसका वक़्त गुज़रता हो, जो रात भर मुर्दा लाश की तरह (ग़ाफिल पड़ा रहता) हो, दिन को गधे की तरह (दुनिया के धंधों में लगा रहता) हो, दुनिया का तो खूब इल्म रखता हो मगर आख़िरत के मामले में बिल्कुल जाहिल हो।''
(सहीहुल जामेअ अस्सग़ीर- 1878)

जिहाद, एक फरीज़ा–ए–गुमग़श्ता

उम्मते–मुस्लिमा ने जिन फराइज़ व वाजिबात को भुला दिया,पसे–पुश्त डाल दिया,उनमें सबसे अहम जिहाद का गुमशुदा फरीज़ा है। जब मुसलमानों की अ़मली ज़िंदगी से जिहाद निकल गया तो वोह रसूलल्लाह(ﷺ)की पेशीनग़ोई के ऐन मुताबिक सैलाबी पानी के झाग की तरह बेवज़न व बेहक़ीक़त होकर रह गए :

''क़रीब है कि(कुफ्र की) क़ौमें तुम्हारे ख़िलाफ जंग करने के लिए एक–दूसरे को इस तरह दावत देकर बुलाएंगी जिस तरह भूखे एक–दूसरे को दस्तरख़्वान पर दावत देकर बुलाते हैं।'' इस पर एक पूछने वाले ने पूछा कि, क्या उस वक़्त ऐसा हमारी क़िल्लते–तादाद की वजह से होगा ? आप (ﷺ) ने फर्माया : ''(नहीं) बल्कि उस वक़्त तो तुम ज़्यादा तादाद में होगे, लेकिन तुम सैलाबी पानी के झाग की तरह होगे और अल्लाह तआला तुम्हारे दुश्मनों के दिलों से ज़रूर ही तुम्हारी हैबत ख़त्म कर देंगे'' तो पूछने वाले ने पूछा : या रसूलल्लाह (ﷺ) ! ये कमज़ोरी क्या होगी ? फर्माया ''दुनिया की मुहब्बत और मौत की कराहत।'' एक और रिवायत में ये अल्फाज़ भी मिलते हैं : सहाबा रजि. ने पूछा : या रसूलल्लाह (ﷺ) ! ये कमज़ोरी क्या होगी ? आप (ﷺ) ने फर्माया : ''तुम्हारा दुनिया से मुहब्बत करना और तुम्हारा किताल को नापसन्द करना।' (अबूदाऊद, अहमद, रिवायत सही)

(नाटो अफ़वाज़ का,अमेरिका की क़यादत में मुत्तहिद होकर मुस्लिम दुनिया पर छा जाना क्या इस हदीस के ऐन–मुताबिक नहीं है? (मुतर्जिम))

जिहाद की तअरीफ़

बुनियादी तौर पर यह बात जान लेनी चाहिए कि किसी हुक्म की **शरई हैसियत** और उसका **शरई मुक़ाम** उसकी शरई तअरीफ़ से मालूम हो सकता है। **लुग़वी मफ़हूम** (शाब्दिक अर्थ)पर शरई अहकाम का दारोमदार नहीं होता।

देखिये,**सलात** का लुग़वी मफ़हूम सिर्फ **दुआ** है। सिर्फ दुआ को शरई नमाज़ नहीं कहा जा सकता। इसी तरह ज़कात का शरई मफहूम पढ़ने और तज़किया के हैं ,लेकिन इसका एक शरई इस्तलाही मफ़हूम और तअरीफ़ है। अहकाम का दारोमदार उस शरई मफ़हूम पर है। इसी तरह लफ्ज़े–सोम बमअना रोज़ा है। इसका लुग़वी मफ़हूम यह है कि एक घड़ी तक खाने–पीने को तर्क कर देना। इस मफ़हूम में इन्सानों के अलावा हैवानात का दाना पानी तर्क करना भी सोम और रोज़े में दाखिल है। लेकिन इसका एक शरई इस्तलाही मफ़हूम है जिस पर अहकामात का मदार है और शरअन उसी का ऐतबार है। इसी तरह **हज** का लुग़वी मअना **क़स्द** (इरादा) है। **अब एक आदमी शहर या घर जाने का क़स्द करता है और फिर कहता है कि मैं हज कर रहा हूं क्योंकि हज से मतलब क़स्द है और मैंने क़स्द कर लिया है,**लेकिन हज का एक शरई मफ़हूम है,शरिअते–मुक़द्दसा में उसी का ऐतबार है और लुग़वी मफ़हूम लेना शरअन बेकार है और इस तरह की तावीलात करने वाला गद्दार है।

बिल्कुल इसी तरह ***लफ्ज़े–जिहाद*** है। इस दौर के इस मज़लूम लफ़्ज़ का लुग़वी मफ़हूम तो ***मेहनत*** है,लेकिन इसका एक शरई मफ़हूम है और उसकी एक इस्तलाही तअरीफ़ है। अब इस शरई मफ़हूम को छोड़कर उसके लुग़वी मफ़हूम को आम करना और उसकी आड़ लेकर शरई जिहाद से रूकना और उसमें सुस्ती करना और तरह–तरह की तावीलात में अवामुन्नास को उलझाए रखना जिहाद पर ज़ुल्म के साथ–साथ मुसलमानों की बदख्वाही और काफ़िरों की खैरख्वाही के मुतरादिफ़ होगा,जिससे हर मुसलमान को अहतराज़ करना लाज़िम है।

अब मैं चन्द तारीफ़ात (परिभाषाएं व मिसालें)आपके सामने रखता हूं। सबसे पहले मैं नबी अकरम सल्ल.की ज़बाने–मुबारक (से की गई जिहाद) की तअरीफ़ पेश करता हूं,खूब अच्छी तरह से सुन लीजिए,–

(एक) सहाबी रज़ि.ने पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल (ﷺ)! **सबसे अफ़ज़ल हिजरत कौनसी है?** नबी अकरम (ﷺ) ने फरमाया,**बेहतरीन हिजरत जिहाद की हिजरत है।** सहाबी रज़ि. ने पूछा कि **जिहाद क्या चीज़ है?** नबी (ﷺ) ने फरमाया,कि **जिहाद यह है कि तुम बवक्ते–मुक़ाबला कुफ्फार से लड़ो और उस रास्ते में न ख़्यानत करो और ना बुज़दिली दिखाओ।** ***(कन्ज़ुल–उम्माल,जिल्द–1,सफ़ा–76)***

..पूछा गया कि ऐ अल्लाह के रसूल (ﷺ) ! **जिहाद क्या चीज़ है?** नबी (ﷺ) ने फरमाया,कि जिहाद यह है कि तुम मुक़ाबले के वक्त कुफ़्फ़ार से लड़ो,कहा गया कि

अफ़ज़लतरीन जिहाद कौनसा है? नबी (ﷺ) ने फरमाया, कि उस शख़्स का जिहाद जिसका घोड़ा कट मरे और खुद उसका खून गिर जाए.. (यानि वो शहीद हो जाए)

(कन्ज़ुल–उम्माल, जिल्द–1, सफ़ा–27)

मुसनद अहमद की एक सही हदीस में है कि एक शख़्स ने रसूलुल्लाह (ﷺ) से पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल (ﷺ)! **यह अल्लाह के रास्ते का जिहाद क्या होता है?** नबी (ﷺ) ने फरमाया, कि ***काफ़िरों से लड़ने का नाम जिहाद है।***

जिहाद कसर–ए–जीम के साथ लुग़त में मअनी मेहनतो–मशक़्क़त हैं और इस्तलाहे–शरअ में **कुफ़्फ़ार से लड़न** में अपनी पूरी ताक़त को इस्तेमाल करने का नाम जिहाद है। ***(फतहुल–बारी, जिल्द–6, सफ़ा–4)***

दीन के दुश्मनों को मग़लूब करने और **कुफ़्फ़ार** से लड़ने का नाम जिहाद है।

(शरह, शरअतुल–इस्लाम, सफ़ा–517)

यानि, **दुश्मनाने–इस्लाम** से लड़ने का नाम जिहाद है।

(क़ामूस–माद्दह, जिल्द–5)

मुहतरम भाईयों, दोस्तों और बुर्जुगों! यह शरई जिहाद है। इसमें हर तअरीफ़ में काफ़िरों से लड़ने का लफ्ज़ मौजूद है। लिहाज़ा जो शरह ने समझाया और फिर सलफ़ ने समझकर तअरीफ़ की है और किताबों में मौजूद है उसी पर ऐतमाद (भरोसा) रखो और किसी के ख़ुतबात या बेजा तावीलात से धोखा न खाओ।

जिहाद की फिर दो क़िस्में हैं।

एक इक़दामी है, जिसके लिये चन्द शराईत फुक्ह–ए–किराम ने बयान की हैं जो दर्जे–ज़ैल हैं:

(1) सरपरस्त की इजाज़त हो।

(2) बअज़ के यहां ताक़त का तवाज़ुन(सन्तुलन) हो।

(3) अमीर आम हो।

(4) दअवते–इलल–इस्लाम हो, याद रहे जिहाद जिस दअवत पर मौक़ूफ़ है, उसके तीन जुम्ले हैं

(1) इस्लाम क़ुबूल कर लो (2) जिज़्या दो, अगर नहीं .....

(3) तो क़िताल के लिये तैयार हो जाओ!

यह दअवत भी उन लोगों के लिये ज़रूरी है जो किसी तौर पर इस्लाम से वाक़िफ़ ना हों और न उन्होंने इस्लाम का नाम सुना हो, लेकिन जिन लोगों को एक बार दअवत पहुंची है या **उन्होंने किसी नश्रयाती ज़रिये(रेड़ियो, टी.वी व अख़बारात) से इस्लाम का नाम सुना है**, *उनको दोबारा मैदाने–जिहाद में दअवत देना सिर्फ़ मुस्तहब है।*

आजकल दअवतो–तब्लीग़ के नाम से जो एक अमल चल रहा है उसका दायरा–

ए–कार सिर्फ़ मुसलमानों में है और इस्लाहो–रहनुमाई और तरग़ीब तक महदूद है। यह वअज़ो–नसीहत व ख़ैरख़्वाही है,जिहाद वाली दअवत नहीं है और ना जिहाद वाली दअवत के साथ उसकी कोई मुशाबिहत(समानता)है।

बहरहाल,जिहाद की यह क़िस्म इक़दामी व हुजूमी है,जो फ़र्ज़े–किफ़ाया के दर्जे में है यानि यह जिहाद दुनिया भर में कहीं ना कहीं ज़रूर होना चाहिए वरना सारी उम्मत गुनाहगार हो जाएगी। गोया यह एक फ़रीज़ा है जो पूरी उम्मत के जिम्मे है।

जिहाद की ***दूसरी*** क़िस्म दिफ़ाई है कि कुफ़्फ़ार ने किसी इस्लामी खित्ते पर हमला किया हो और मुसलमान दिफ़ाअ में लड़ रहे हों,अगर वो नाकाफ़ी हों तो रफ़्ता–रफ़्ता पूरी दुनिया के मुसलमानों पर जिहाद फ़र्ज़े–ऐन हो जाता है। इस क़िस्म के जिहाद के लिये कोई शर्त नहीं ...

एक ज़रूरी बात यह भी समझ लें कि जिहाद की तअरीफ़ में बअज़ उल्माअ ने जिहाद की बअज़ अन्वाअ (क़िस्मों)का ज़िक्र भी किया है यानि जिहाद की,

एक क़िस्म, जिहाद–बिल–माल है

दूसरी क़िस्म,जिहाद–बिल–लिसान है

तीसरी क़िस्म, जान से जिहाद करना है।

अर्ज़ यह है कि ***जिहाद बिल लिसान वोह है जिससे मैदाने–जिहाद का फ़ायदा हो यानि जिहाद की तरग़ीब हो,तक़रीर हो,फ़ज़ाईले–जिहाद का तज़किरा हो,जिहाद से मुत्तालिक़ जोशीले अशआर हों और जानदार नज़्में हों,कुफ़्फार को धमकियां हों,पुरसोज़ ललकार हो,यह जिहाद बिल लिसान है।*** ना कि यह कि वो घण्टे–घण्टे भर तक़रीरें व बयान तो खाने–पीने और पहनने के आदाब पर हो और फिर कहा जाए कि मैंने जिहाद बिल लिसान किया। यह नेक काम तो हो सकता है लेकिन जिहाद बिल लिसान नहीं।

इसी तरह ***जिहाद बिल माल यह है कि आपके माल से मैदाने–जिहाद और मुजाहिदीन को फ़ायदा पहुंच***,ना कि यह कि आपने किसी फ़क़ीर को पैसा–ज़कात अदा किया और फिर कहा कि मैंने जिहाद बिल माल किया,यह नेक काम तो है लेकिन जिहाद बिल माल नहीं।

इसी तरह बाक़ी चीज़ों के बारे में सोच लीजिए कि ***जान से जिहाद यह है कि उस जान को मैदाने–जिहाद में लगा दो और उस मुक़द्दस अमल में उसे खपा दो।*** जिहाद बिल नफ़्स यह है कि जिसमें नफ़्स वास्ता और ज़रिया व अअला बन जाए,उसी मैदाने–जिहाद के लिये! ना कि यह कि मैदाने–जंग तो ख़्वाब में भी ना देखा हो और कहता फिरता हो कि मैं मुजाहिद हूं,जिहाद कर रहा हूं। और अगर हर नेक अमल करने वाले को आप मुजाहिदे–शरई कहेंगे तो फिर यक़ीनन(**फ़ज़्ज़लल्लाहुल मुजाहिदीना अ़लल क़ाईदीना अजरन अ़ज़ीमा**)(अल्लाह तआला ने मुजाहिदीन की फ़ज़ीलत बख़्शी है,जिहाद से पीछे रह जाने वालों पर,एक बड़े अज्र के ज़रिये) का मफ़हूम समझना मुहाल हो जाएगा,कि मुजाहिद का दर्जा बैठने वाले के मुकाबले में बड़ा है,क्योंकि बैठने वाले भी सहाब–ए–

किराम रज़ि.थे,जिनके अअमाल सौ फ़ीसदी सही थे,तहज्जुदगुज़ार थे,रोज़ेदार थे,हर इबादत में मशग़ूल थे,उनको इस हालत में मुजाहिदीन क्यों नहीं कहा गया,बल्कि मुजाहिदीन की सफों से उस वक़्त उनको ख़ारिज क्यों किया? और सिर्फ़ उनको मुजाहिद क्यों क़रार दिया गया जो कुफ़्फ़ार के मुक़ाबले में निकले थे? मअलूम हुआ कि मैदाने–जिहाद में जानेवाला मुजाहिद होता है,हर आबिद मुजाहिद नहीं होता !

मेरे भाई और मेरे दोस्त ! जिहादे–शरई करने वाले को मुजाहिद कहो। जिहादे–लुग़वी यानि किसी नेक मेहनत जिसमें जिहाद जैसा सवाब मिल जाता हो तो यही ग़नीमत है कि जिहाद के सवाब की तरह उनको सवाब हासिल हो गया। ना कि यह कि वो खुद ब खुद मुजाहिद बन गया कि जहाज़ के क़रीब भी ना गया हो और वो पायलट बन गया। आजकल तो इस मुक़द्दस लफ़्ज़ (जिहाद) को खेल तमाशा बनाया जा रहा है। कहते हैं कि मच्छर के खिलाफ़ जिहाद,मलेरिया के खिलाफ़ जिहाद,नाख्वान्दगी के खिलाफ़ जिहाद,जनसंख्या के खिलाफ़ जिहाद,महंगाई के खिलाफ़ जिहाद,वगैरह–वगैरह। और कभी उन्हें यह कहने की जुर्रात ना हुई कि ***अमेरिका के खिलाफ़ जिहाद, रूस–बरतानिया–डेनमार्क व आस्ट्रेलिया के खिलाफ़ जिहाद, इज़राईल के खिलाफ जिहाद, और हर सरकश, ताग़ूत, काफिर, मुश्रिक के खिलाफ़ जिहाद !***

(जंगे–खन्दक, अज़ मौलाना फ़ज़ल मुहम्मद, सफ़ा–13)

इसी तरह जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह की **जम्हूरी** तअबीर भी अस्रे–नौ का एक बड़ा अलमिया(दुखद पहलू) है। इससे कौन इन्कार कर सकता है कि जम्हूरी अमल अवाम की सोच और ख़्वाहिशात को पूरा करने के लिये अवाम की नुमाइन्दगी का नाम है। ख्वाहिशात की यह मुहब्बत अवामुन्नास(आम लोगों) के लिये एक पसन्दीदा चीज़ बना दी गई है

زُيِّنَ لِلنَّاسِ حُبُّ الشَّهَوَاتِ (14)

(ज़ुय्यिना लिन्नासि हुब्बुश्शहवात.) *(आले–इमरान–14)*

जबकि जिहाद अल्लाह के कलमे की सरबुलन्दी और फ़ित्ने के खात्मे के लिये आग व ख़ून से गुज़रने और क़ुबानियां देने का नाम है और यह काम इन्सान को तब्अन नागवार है।

وَهُوَ كُرْهٌ لَّكُمْ (216)

(वहुवा कुरहुल्लकुम) *(अलबक़रह–216)*

अब भला लोगों को उनकी ख़्वाहिशात की तकमील की जद्दोजहद में मुनहमिक करना,उनसे जानो–माल की क़ुर्बानियां लेने की तरह कैसे हो सकता है ? और यह बात तो अमलन भी नज़र आती है कि जम्हूरी अमल,अपने शुरकाअ के **मेअयारे–ज़िन्दगी** को बढ़ाता है,जबकि जिहाद फ़िक्रो–क़नाअत की आज़माइश लाता है। कहां, उस्व–ए–रसूल (ﷺ)

जिसकी पैरवी दुनिया की मुहब्बत को दिल से निकालती है और कहां मुस्लिम मुआशरों में मेअयारे–ज़िन्दगी को बुलन्द करने की खातिर चलाई जाने वाली जम्हूरी जद्दोजहद, जिसमें माद्दी तरक्की(ऐशो–इशरत)असल ज़िन्दगी है,जहां मफ़ादात ही वो पैमाना हैं जिस पर रियासत व जम्हूर के तअल्लुक़ को परखा जाता है,हाकिम व मुहकम(राजा व प्रजा)के दरमियान यही रिश्ता है,क़यादत और अवाम के बीच यही मीसाक़े–वफ़ा है जो उसे पूरा करे,उसकी हिमायत की जाएगी। जो अवाम की झोली को मराआत व सहूलियात से ना भर सके उसका अमल काबिले–इत्तिबाअ नहीं। सारा जम्हूरी फलसफ़ा और उस छतरी के तहत क़ायम इदारे और एनजीओज वगैरह भी इसी अक़ीदे के फ़रोग़ का वसीला हैं।

हक़ीक़त में अमल को **इन्सानी बहबूद** (मानव–विकास)वगैरह के खुशनुमा नाम देकर उम्मत को बड़े मक़ासिद से दूर कर दिया गया है। अव्वल तो यह सारी **फलाही** मुहिमात(लफ़्ज़े–फ़लाही का इससे बढ़कर ग़लत इस्तेमाल मुम्किन नहीं)बिलअसल सरमायादारी(पूंजीवाद) के फ़रोग़,मुखालिफ़ते–शरअ और अहले–मग़रिब की इक़दार (सत्ता) की तरवीज के लिये होती हैं ताहम, अगर **अवामी बहबूद** (अवाम की तरक्की)के नाम पर नेकी कर भी रहे होते हैं तो उस ख़ैर से जो शर,वो हासिल करना चाहते हैं वो सिर्फ़ इतना है कि हमें फ़िक्रे–दुनिया में मशग़ूल कर दिया जाए,हम माद्दी तरक्की की दौड़ में मगन हो जाएं,और उन मुहिमात से अलग रहें जो कुफ़्र की हुक्मरानी को दुनिया में चैलेन्ज करती हों और जिनसे उम्मते–मुस्लिमा के दिफ़ाअ का अहतिमाम किया जा सकता हो।

चन्द अरब डॉलर के खिलौने(जिन्हें तरक्कीयाती मन्सूबों का नाम दिया जाता है) उनसे अगर इस उम्मत,दअवत के क़ायदीन बनते हों,उसके नौजवानों को मुतबादिल(इसके बदल की)मसरूफ़ियात मिल जाती हों,उसकी ख्वातीन को(**व क़र्नी फ़ी बुयूतिकुन्ना**) ***और अपने घरों में ठहरी रहा,*** के बजाय अवामी खिदमत के नाम पर घरों से निकाला जा सके,हमारे बच्चों के लिये सेक्यूलर मग़रिबी तअलीमी इदारों के जाल फैलाए जा सकें,तो मग़रिब के लिये नुकसान किस बात का ? जो काम **कोडों (सजा)**से ना हो सकें उन्हें **तोड़ों(पैसों)** से हल करना अहले–मग़रिब ने सीख लिया है। दिल और दिमाग़ को डॉलर के ज़रिये फ़तह करने का यह सलीबी व सहयूनी मन्सूबा पूरे आलमे–इस्लाम में जारी है। ग्दी ज़राए से हमारा ही सरमाया लूटकर हमें ज़िल्लत के निवालों की सूरत में खिलाया जा रहा है। **सरमाया,** ***यहूदो–नसारा हमें पहले भी देते थे,लेकिन जिज़्ये की सूरत में,उस दौर में जब ख़िलाफ़त क़ायम थी,शरियत ग़ालिब थी,और इस तौर से देते थे कि*** **(अय्यँदिवं वहुम साग़िरून)** ***अपने हाथों से और ज़लील होकर,*** और फ़ुक्हा–ए–किराम के बक़ौल,इस हुक्मे–इलाही को पूरा करने के लिये किसी ज़िम्मी को मुलाज़िमत के ज़रिये उसे भेजने की इजाज़त नहीं होगी बल्कि ***वो खुद आएगा और इस हालत में जिज़्या अदा करेगा कि वो खड़ा होगा और वसूल करने वाला मुसलमान बैठकर वसूल करेगा।***

मुस्लिम मुआशरों में **मग़्रिबियत** की अलमबरदारी करने वाले माद्दी तरक्की की मुहिमात को बड़ी इबादत क़रार देकर,मुसलमानों को सरमायादारी निज़ाम के कारिन्दे बनाकर शउरन या लाशउरन उन्हें अपने दिफ़ाअ और जिहाद जैसी अज़ीमुश्शान इबादत से दूर रख रहे हैं। कुफ़्र की यलग़ार और फ़ित्नों से बेपरवाह होकर मसाईल के हल की जद्दोजहद और **सहूलियात** की फ़राहमी की मुहिमात में ज़िन्दगियां पिघला देना ऐसे ही हैं जैसे हम सांपों से बेपरवाह होकर जंगल से फूल चुनने लग जाएं। ज़ाहिर है सांपों की खुशी भी इसी में है लेकिन उसका क्या कीजिए कि फूलों ने मुरझाना है,सांपों ने अपनी रविश तर्क नहीं करनी,और खुद जंगल को एक दिन चटियल मैदान बन जाना है ! फिर इस सब कुछ का हतमी नतीजा **ख़सिरद्दुनिया वल आख़िरा** के सिवा और क्या निकलेगा?

अगर लोगों को **तरक्की** दिलाना,उनके माद्दी मसाइल हल करना,उनके मेअयारे–ज़िन्दगी को बुलन्द करना ही जिहाद होता तो इस्लाम के अहदे–ज़र्रीं में रसूलुल्लाह (ﷺ) और सहाबा–ए–किराम रिज़्वानुल्लाह अलैहि अज़मईन ***बनु नज़ीर, बनु क़ुरैज़ा (यहूदो–नसारा की बस्तियों) से निपटने और तबूको–ताइफ़ के मअरके सर करने के बजाय(मआज़अल्लाह–अल्लाह की पनाह)ऐसा लायहिय–ए–अमल (तर्ज़े–ज़िन्दगी)देते कि जिसमें पहले मदीने की गलियों को कुशादा व हमवार किया जाता, चौराहों में कुमकुमे और मशअलें रोशन होतीं,सड़कों और पुलों की इफ्तिताही तक़रीबात मुनअक़िद की जातीं,तिजारती मेलों को फरोग़ मिलता,और कुछ नहीं तो कम से कम मस्जिदे–नबवी (ﷺ) के सुतूनों और फर्श ही को पक्का कर लिया जाता ! (ओ तरक्की के अलमबरदारों !कुछ तो तुम्हारे पास इस बात का जवाब ज़रूर होगा?)***

ईमान की उस मिसाली बस्ती में अगर कोई ज़रूरी इन्तिज़ामी काम हुए भी तो मेअयारे–जिन्दगी बुलन्द करने के लिये नहीं हुए। हुए भी तो ताग़ूतों के सूदी क़र्ज़ों की बुनियाद पर नहीं हुए,यहूदो–नसारा की मुशावरतों और तरबियती **वर्कशापों** के ज़ेरे–साए नहीं हुए,कुफ़्फार को अपने बराबर की कुर्सियों पर बैठाकर नहीं हुए,ना ही ऐसे आलम में हुए कि **इस्लाम** और उसके क़वानीन मग़लूब हों,मुस्लिम सरज़मीनों पर सलीबियों और सहयूनियों ने लश्करकशी कर रखी हो,मुसलमान क़ैदियों से कुफ़्फार के अक़ुब्बत–खाने(जेलखाने) आबाद हों,यहूद अर्ज़े–मुक़द्दस पर क़ाबिज़ हों,बल्कि यह नागुज़ीर इन्तिज़ामी काम तब हुए जब मअलूम दुनिया का दो–तिहाई हिस्सा इस्लाम के कब्ज़े में था,अल्लाह का दीन ग़ालिब था,इस्लामी सरहदें महफ़ूज़ो–मामून थीं और ***दुनिया में कोई एक मुसलमान ऐसा ना था जिसे काफ़िरों ने कमज़ोर पाकर दबा रखा हो।***

आज जबकि पौने–दो अरब के क़रीब मुसलमान सबके सब मुसतज़अफ़ीन (लकवे के मारों) की सी ज़िन्दगी गुज़ार रहे हों,इस्लाम के क़वानीन सिर्फ़ किताबों में हों,हमारे बारे में पॉलिसियां सात समुन्दर पार से बनकर आती हों,ऐवानों में ***शरीअत के***

सिवा हर **भलाई** पर बात हो सकती हो,हिन्दू–मुस्लिम–सिक्ख–ईसाई बराबर की नशिस्तों पर बैठकर मिल्लत के फ़ैसलों में शरीक होते हों,एनजीओज़ और मुल्की व ग़ैर मुल्की इदारों को हर काम की खुली छूट हो,ऐसे में **तालीम** के नाम पर मग़रिबी सेक्यूलर इदारों का खुल जाना, इत्तिलाअत की अहमियत के पेशे–नज़र कम्प्यूटर नामी एक आअले के ज़रिये गली–गली मुहल्ले–मुहल्ले क़हवाखानों का फैल जाना,बहबूदे–आबादी के नाम पर नस्लकुशी की मुहिमात का आम हो जाना,तरक्क़ियात और इमदाद के नाम पर बैनुलअकवामी सूदी जाल में उलझ जाना,अजीब नहीं लगता। अजीब यह लगता है कि इसे ही जिहाद क़रार दे दिया जाए ! सारी तवानाईयां और वसाईल उन्हीं मुहिमात में ग़र्क होकर रह जाएं जबकि उम्मत के दिफ़ाअ की खातिर मोर्चों में बैठे लोग निहत्थे पड़े रहें।

जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह के शरई मअनी का शउर ही हमें इस फ़रीज़े की अदायगी का पाबन्द बना सकता है वरना तो हम किसी भी काम को जिहाद क़रार देकर इस अज़ीम फ़रीज़े से सुबुकदोश हो सकते हैं। अगर सहाबी–ए–रसूल(ﷺ)ने भी जिहाद के इसी मफ़हूम पर इकतफ़ा किया होता और आग व ख़ून के दरियाओं को उबूर (पार) ना किया होता तो बिलाशुबहा यह दीन मदीने मुनव्वरा की हदों को उबूर ना कर पाता, बल्कि (मआज़अल्लाह) इसका नामो–निशान तक मिट जाता। यह जिहाद ही का मैदान था जब हमारे नबी (ﷺ) ने(बद्र की घाटी में) रोते गिड़गिड़ाते अपने रब से यह दुआ की कि ***ऐ अल्लाह !अगर आज यह गिरोह हलाक़ हो गया तो (इस ज़मीन पर)तेरी इबादत न की जाएगी। ऐ अल्लाह ! अगर तू चाहे तो आज के बाद तेरी इबादत कभी न की जाए। (अर्रहीकुल–मख़्तूम–296)***

बस,उम्मत के रहबरों को चाहिए कि वो जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह की इस्तलाह को ऐसे मअनी ना दें कि नस्ले–नौ(नई नस्ल,जो पहले ही से मग़रिबियत के ज़ेरे–असर होने की बिना पर दीन से कोसों दूर है) मैदानाहा–ए–कारज़ार(जंग के मैदानों)को बिल्कुल ही भूला बैठें। बल्कि उन्हें चाहिए कि मुसलमानों को इस गमगुश्ता फ़रीज़े पर उभारें,क्योंकि यह रसूलुल्लाह (ﷺ)की सुन्नत है।

अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त ने इस उम्मत को चुना ही इस काम के लिए है, ये इस उम्मते–तौहीद का आलमग़ीर हदफ़ है जिसका हुसूल एक मुसलसल अ़मल है। अल्लाह और रसूलल्लाह (ﷺ) की सरीह मुब्श्शिरात पर हमारा ईमान है, हक़ का ग़ल्बा हक़ है। यहूद व नसारा और मुशरिकीन की तहज़ीबें और उनका बनाया हुआ आ़लमी जबर का ढ़ांचा, ये सब दुनिया से मिट जाएंगे(इंशाअल्लाह) ये वोह गिरती हुई दीवारें हैं जिनका फिक्री और अ़मली सहारा लेना, उनसे मुकालमा करना,चाहे यह मुकालमा बैनुलमज़ाहिब हमआहंगी(सारे दीन एक जैसे)के नाम पर हो या बक़ाए–बाहिमी(आपसी सुरक्षा)के सफेद पर्चम तले,दरअसल जाहिली इक़दार को एक हक़ीक़त के तौर पर तसलीम करना है। बातिल अफकार के उन सायों का अन्जाम भी दीवारों के साथ मुक़द्दर है। **''अगर आप हमारे माबूदों को क़ुबूल कर लें तो हम भी आपके खुदा की इबादत करेंगे''**और

"हमारे खुदाओं को बुरा भला न कहा जाए ..." जाहिलियत का क़दीम मुतालबा है। वही जाहिलियत आज मग़रिबी अक़दार(इज़्ज़त)व तहज़ीब का ज़ेवर पहनकर,फिर हमारे सामने नमूदार हुई है और चाहती है कि हम उसकी बरतरी को कुबूल कर ले,इस्लाम के बजाए जमहूरियत हमारी असास(पहचान),शरिअत के बजाए सरमायादारी (पूंजीवाद) हमारा तरीक–ए–ज़िंदगी, क़ुर्आन के बजाए इन्सानी दसातीर (मुल्की संविधान) हमारा लाएहा–अ़मल,दीनी उखुव्वत(मुहब्बत)की जगह इन्सानियत हमारी पहचान, और बैते–काबा के बजाए बैते–अबयज़ (व्हाइट–हाउस)हमारा माअनवी और अ़मली किब्ला बन जाए। इस सारी जाहिलीयत के मुक़ाबले में बहैसियत मुसलमान हमारा जवाब वही है जो हमारे राज़िक़ ने हमें तालीम फर्माया है और जिसे हम अपने (वाहिद) सच्चे सहीफे में लिखा हुआ पाते हैं :

قُلْ يَا أَيُّهَا الْكَافِرُونَ (1) لَا أَعْبُدُ مَا تَعْبُدُونَ (2) وَلَا أَنْتُمْ عَابِدُونَ مَا أَعْبُدُ (3) وَلَا أَنَا عَابِدٌ مَّا عَبَدْتُّمْ (4) وَلَا أَنْتُمْ عَابِدُونَ مَا أَعْبُدُ (5) لَكُمْ دِينُكُمْ وَلِيَ دِينِ (6)

"आप कह दीजिए कि ऐ काफिरों ! न मैं इबादत करता हूं उसकी जिसकी तुम इबादत करते हो,न तुम इबादत करने वाले हो उसकी, जिसकी मैं इबादत करता हूं। और न मैं इबादत करूंगा उसकी जिसकी तुम इबादत करते हो,और न तुम उसकी इबादत करने वाले हो जिसकी मैं इबादत कर रहा हूँ। तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन है और मेरे लिए मेरा दीन। " (सूर : काफ़िरून)

अल्लाह का ये सच्चा दीन तौहीद के इक़रार और शिर्क से इंकार की असासो–बुनियाद पर क़याम है । इस दावत की सरबुलन्दी मतलूब है। तवानाइयों का राहे–मक़सूद में खपना,अमवाल का अहदाफे–मनसूस(कुर्आन–सुन्नत के दलाईल)में लगना,अक़्लमंदी की दलील है। आग जब भड़क उठे तो उसका बुझाना ही वक़्त का अहमतरीन हदफ होता है, उसमें कूदने वाले भले तन्हा ही हों ***"यानारू कुमी बरदावं व सलामा"*** **ऐ आग! सर्द हो जा और सलामती बन जा** की सदा सुनते रहते हैं, बेघर क्यों न हों, ***"ला ताहज़न इन्नल्लाह मआना"*** **ग़म न करो,अल्लाह तुम्हारे साथ है**,का वादा उन्हें रूकने नहीं देता,क्योंकि मालिक ने उनके रास्ते के साथ**"फी सबीलिल्लाह"**की खुशख़बरी मुन्सलक़ की है। चलने वाले को उस राह पर अल्लाह मिलता है,उन तक पहुंचने के एक नहीं सभी रास्ते नज़र में आ जाते हैं***(लनाहदीयन्नहुम सुबुलना)*** **हम ज़रूर बा ज़रूर उन लोगों को अपने रास्ते दिखा देंगे।**

बस, ऐ अल्लाह के मददगारों ! तन्हाई में घबराना मत और मुश्किल में उदास न होना ! कि तुम्हारे इस क़ाफिले की निस्बत **ईमामुल–मुजाहिदीन रसूलल्लाह** (ﷺ) से है,आप(ﷺ) ही के नक़ूशे–पा हैं जिनको तुमने संगे–मील कहा है, जिन्हें तुमने क़ुबूल किया है। आप ही की हिदायात हैं जिन्हें तुमने क़ाबिले–इत्तिबा जाना है। अगर ये नक़ूशे–पा,ये हिदायात और ये फैसले तुमने सच्चे दिल से क़ुबूल किए हैं तो सुन लो कि फिर तुम्हारे लिए उनकी जानिब से खुशख़बरियां और तुम्हारी राह के बिल्अक्स, दुनियापरस्ती इख़्तियार करने वालों के लिए वईदें(चेतावनियां) हैं :

''तबाह हो जाए दीनार का बन्दा और दिरहम का बन्दा,और चादर का बन्दा! अगर उसे दिया जाए तो खुश और न दिया जाए तो गुस्से ! तबाह हो जाए और मुंह के बल गिरे ! और अगर उसे कांटा चुभे तो(अल्लाह करे कि)न निकले। मुबारक हो उस बन्दे को जो अल्लाह की राह में अपने घोड़े की बाग थामे हुए हो,बाल बिख़रे और गर्द आलूद पाँव ! अगर उसे पहरे पर लगा दिया जाए तो पहरा दे,और अगर पिछले लश्कर में छोड़ दिया जाए तो पिछले लश्कर ही में रहे। अगर इजाज़त मांगे तो इजाज़त न मिले और अगर सिफारिश करे तो उसकी सिफारिश न सुनी जाए।''(बुख़ारी,फी किताबुल जिहाद)

बस मुबारक हो काफ़िला–ए–नूर के शहसवारों ! कि तुम्हारा रास्ता क़ाबिले–रश्क है,गुरबते–इस्लाम के इस दौर में तुम्हारी आंखें अहले–दुनिया की चकाचौंध से मरअूब न हो जाएं। तुम अ़मल की दुनिया में उस हस्ती के वारिस ठहरे जिसने दमे–रूख़सत,जबकि घर का अनाज भी रहन पर लिया गया था,नौ चमकती तेज़ धार तलवारें अपने दरो–दीवार पर लटकती छोड़ी थीं, अलैहिस्सलातुवस्सलाम ! मुबारक हो कि तुम इस दुनिया में क़ाफिला–ए–हिजाज़ की जानशीनी के और इस जहान में सालारे–काफिला(ﷺ)की हमनशीनी के बरहक़ उम्मीदवार हो ! **वहसुना उलाइका रफ़ीक़ा**

(इस्राईली प्रधानमंत्री गोल्डामेयर ने अल्लाह के रसूल (ﷺ) की हयाते–मुबारका के इस अज़ीम फ़लसफ़े को अमली तौर पर 1967 की अरब–इस्राईल जंग में आज़माया और अरबों को एक तारीख़ी व फैसलाकुन शिकस्त से दो चार होना पड़ा। वाह रे मुसलमानों! तुमने तो अपने नबी से ताक़त का सबक़ नहीं सीखा,मगर इस्लाम की सबसे बड़ी दुश्मन क़ौम,यहूद ने इसी सबक़ को पकड़ा और उसी ताक़त के सबक़ से तुम्हारी इज़्ज़तों को मलियामेट करके रख दिया। (मुतर्जिम))

ऐ साथियों ! अपने इख़्लास को परखो, अपने नसीब को जांचों, तक़्वा को अपना इमाम बना लो **(इत्तक़ुल्ललाह)** और सच्चों के साथ हो जाओ **(व कुनू मअस्सादिक़ीन)** चाहे वह जहां कहीं भी हो। ***नामों की तख़्तियों को मत पढ़ना कि ये आए रोज बदलती रहती है,कामों की फेहरिस्त को जांचना कि ये तारीख में सब्त (जम) हो जाते हैं, दुश्मन की हक़ीक़त को समझना,दोस्तों की तलाश आसान हो जाएगी !*** देखो!

सबीलिल्लाह को ठुकराना आखिरत के किसी सच्चे राही के लिए मुमकिन नहीं होता। जिन नतीजे पर बहुत से लोग आइंदा पहुंचेगे, तुम इस पर आज पहुंच जाओ।

सुनो ! वक़्त ने हमेशा साबित किया है कि **''वही''** की **कामिल इत्तिबा** ही हर दौर में **कश्ती–ए–नूह** होता है। इससे बाहर कितनी ही बुलन्द चोटी हो, पानी को उस तक पहुंचना ज़रूरी है फिर कश्ती से दूर रहने का फायदा?इस्लाम के कोहान की चोटी **''ज़ुरवतुसनामिह''** को इख़्तियार न करने से हासिल ?

देखो ! ये सबीलिल्लाह है,अल्लाह का रास्ता है। बहुत शफ़्फ़ाफ़, बहुत वाज़ेह! तौहीद के नामलेवा क़ाफिले दर क़ाफिले इस पर निकलते रहेंगे,नूर की ये शाहे–राह आबाद रहेगी, जूनूं की खेतियां पकती रहेंगी, सरों के सौदे होते रहेंगे। सूद व ज़यां के ज़ाएचे वोह बनाएं,जिनके लिए दुनिया अहमतर हो, जिसका भरोसा वसाइल पर हो, लेकिन जिसने तफ़वीज़ व तवक्कुल का ज़ाएक़ा चख रखा हो, जा ***''उफव्विज़ु अमरी इल्ललाह''*** ***''मैं अपना मामला अल्लाह के सुपुर्द करता हूँ''***का इक़रार करता हो,जिसकी नज़र ***''कुतिबा अलयकुमुल क़िताल''*** ***'तुम पर जंग फर्ज़ कर दी गई है'*** पर हो, जान व माल उसके रहते कब हैं कि वोह आज़ादमर्ज़ी से कोई फैसला करे!

ऐ हमारे रब! हमें तौफ़ीक़ दीजिए कि हम आपको और आपके आइदकर्दा किसी फरीज़े को भूल न जाएं क्योंकि हम इसका तहम्मुल(बर्दाश्त)नहीं कर सकते कि आप हमें भूल जाएं, कि आपको भूलकर हम जाएंगे कहाँ ?

وَلَا تَكُونُوا كَالَّذِينَ نَسُوا اللَّهَ فَأَنسَاهُمْ أَنفُسَهُمْ أُولَٰئِكَ هُمُ الْفَاسِقُونَ **(19)** لَا يَسْتَوِي أَصْحَابُ النَّارِ وَأَصْحَابُ الْجَنَّةِ أَصْحَابُ الْجَنَّةِ هُمُ الْفَائِزُونَ **(20)**

''और उन लोगों जैसे न होना जिन्होंने अल्लाह को भुला दिया तो अल्लाह ने उन्हें ऐसा कर दिया कि वोह खुद अपने आपको भूल गए,ये बदक़िरदार लोग हैं। जहन्नम वाले और जन्नतवाले बराबर नहीं। अहले–जन्नत तो कामयाब होने वालेहैं।''

(सूर : हश्र : 19–20)

وَحَرِّضِ الْمُؤْمِنِينَ(84)

(व हर्रिज़िल मुअमिनीन) (अन्निसा–84)

और अहले–ईमान को (जिहाद पर)उभारो।

दुश्मन के हमले की सूरत में, दिफ़ाई जिहाद वक़्त का अहमतरीन फ़र्ज़ होता है।

यह शव्वाल 3 हिजरी का वाकिआ है। दुश्मन मदीनतुन्नबी (ﷺ) पर हमलावर होने को है। इस्लाम का मरकज़ खतरे की ज़द में है। मुसलमानों की इस बस्ती में नमाज़ रोज़े समेत हर तरह के फ़राईज़ की बजाआवरी जारी है। इस बस्ती की मस्जिद में पढ़ी जाने वाली एक नमाज़ पचास हज़ार नमाज़ों के बराबर है। लेकिन अब सब मुसलमान दिफ़ाए–दीनो–मिल्लत के लिये निकल खड़े हुए हैं क्योंकि वक़्त का अहमतरीन तक़ाज़ा यही क़रार पाया है।

ऐसे में एक आदमी ज़िरहबन्द होकर रसूलुल्लाह (ﷺ) की खिदमत में हाज़िर होता है और कहता है **उक़ातिलू अव उसलिमू? मैं क़िताल करूं या इस्लाम लाउं ?** नबी (ﷺ) की तरफ़ से जवाब मिलता है **असलिम, सुम्मा क़ातिला ! इस्लाम लाओ, फिर क़िताल में शामिल हो जाओ !** चुनांचे वो शख्स इस्लाम लाया, फिर जंग में शरीक हुआ और शहीद हो गया। इस पर रसूलुल्लाह (ﷺ) ने फरमाया, ***अमिला क़लीला व उज़िरा कसीरा. अमल कम किया, लेकिन अज्र बहुत पाया। (बुखारी, किताबुल–जिहाद)***

यह वही अन्सारी सहाबी अम्र बिन साबित रज़ि. हैं जिनके बारे में हज़रत अबूहुरैरह रज़ि. फरमाया करते थे कि ***मुझे उस आदमी का (नाम) बता सकते हो जिसने नमाज़ तक ना पढ़ी फिर भी वो जन्नत में दाखिल हो गया ?***

(फतहुल–बारी, जिल्द–6, सफा–25)

उहद के दिन जब दुश्मन इस्लामीं सरज़मीन पर हमलावर हुआ तो उस सहाबी रज़ि. से ईमान लाने के बाद ना तो नमाज़ की अदायगी का फ़ौरी तक़ाज़ा किया गया, ना रोज़े ज़कात की बात की गई बल्कि रसूलुल्ललाह (ﷺ) ने उसे यही हुक्म दिया कि मैदाने–क़िताल में कूद पड़ो क्योंकि दीगर तमाम इबादात से बढ़कर उस मौक़े का अहमतरीन फ़र्ज़ यही था कि हमलावर दुश्मन के ख़िलाफ़ दिफ़ाअ किया जाए ताकि ईमान और अहले–ईमान को कुफ्र की यलग़ार से बचाया जा सके, ***इस्लाम की बुनियादों, कलमा, लाइलाह–इल्ललललाह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह, नमाज़, रोज़े और दीगर शआइर(निशानियों)की हिफ़ाज़त हो सके।***

शैख़ अज़्ज़ाम की किताब **अद्दिफ़ाउ अन आराज़िल मुस्लिमीना अहम फ़ुरूज़ि लिल आयानन बअदल ईमान,** *ईमान के बअद अहमतरीन फ़र्ज़े–ऐन हमलावर दुश्मन के खिलाफ़ दिफाई जिहाद* (और मक्बूज़ा मुस्लिम सरज़मीनों की बाज़याबी) जिहाद की इसी क़िस्म के अहकामात पर मबनी है। जिहाद की यह क़िस्म दिफ़ाई जिहाद कहलाती है। दिफ़ाई जिहाद फ़र्ज़े–ऐन यानि हर मुसलमान पर फ़र्ज़ होता है। जब दुश्मनाने–इस्लाम मुसलमानों की

सरज़मीनों की तरफ़ बढ़ें(या महज़ बढ़ने का इरादा करें) तो सब पर यह लाज़िम होता है कि कुफ़्र के उन नापाक हाथों को रोकने के लिये अपना पैसा और जान लगाएं।

इमाम इब्ने आबिदीन रह. ने अपने हाशिये की जिल्द 3 सफ़ा 238 पर लिखा है, ***और अगर दुश्मन किसी इस्लामी सरहद पर हमलावर हो तो जिहाद नमाज़ और रोज़े की तरह फ़र्जे–ऐन हो जाता है जिनको छोड़ने की गुंजाईश नहीं।***

(बहवाला, देखना काफिला छूट ना जाए, अज़ अज़्ज़ाम शहीद रह.)

फिर अपनी इसी किताब में आगे चलकर शेख़ अज़्ज़ाम शहीद रह. लिखते हैं *अगर जिहाद फ़र्जे–ऐन हो जाए तो वालिदैन से इजाज़त लेना ज़रूरी नहीं रहता। बिल्कुल उसी तरह जैसे नमाज़ की अदायगी या रोज़े रखने के लिये उनकी इजाज़त ज़रूरी नहीं होती।*और यह भी कि ***किसी उज़्र के बग़ैर जिहाद के फ़र्जे–ऐन को छोड़ने वाले और रमज़ान में बग़ैर उज़्र के रोज़ा ना रखने वाले में कोई फ़र्क़ नहीं।***

इस्लाम के सुनहरी दौर की पूरी तारीख़ इस बात पर गवाह है कि जब भी कुफ़्र ने इस्लाम और मुसलमानों की तरफ़ मैली आंख से देखा, अहले–इस्लाम ने पूरी दस्तयाब कुव्वत इस्तेमाल करके उस हमले का दिफ़ाअ किया और उम्मत के बेहतरीन लोग और नादिरे–रोज़गार हस्तियां(मालदार लोग) इस्लाम के मोर्चों में पाई गईं। उहद व खन्दक़ और तबूक वग़ैरह के ग़ज़वात और बअद के अदवार की सैंकड़ों जंगी मुहिमात इसकी वाज़ेह मिसालें हैं।

दिफ़ाई जिहाद की यह अहमियत मुसलमानों पर हमेशा इस क़द्र वाज़ेह थी कि कभी किसी के ज़ेहन में इसके शरई हुक्म के हवाले से इबहाम(शक)पैदा नहीं हुआ। हर मुसलमान यह जानता था कि ऐसी हालत में सबको निकालना है, बहरहाल (हल्के हों या बोझल)निकलना है और मयस्सर वसाइल(उपलब्ध संसाधनों) के साथ कुफ़्र का मुक़ाबला करना और उसे पछाड़ना है। ऐसे मौक़े पर तरबियत और ईमान के दर्जों में तफ़ावुत (दूरी) की भी कोई शर्त ना थी, लिहाज़ा वो भी निकले जो बरसों सुहबते–नबवी (ﷺ) से शर्फ़याब रहे थे और वो भी जो ऐन मैदाने–जंग में भी ईमान लाए और एक नमाज़ भी ना पढ़ पाए थे। माली जिहाद की अहमियत भी वाज़ेह थी। कोई अपने घर का पूरा सामान खपाकर और कोई चन्द सैर अनाज खर्च करके उस जिहाद में शरीक होता(क्योंकि इससे ज़्यादा उनके बस में ना होता था) इसी यकसूई का नतीजा था कि इस्लाम पर हमला नामुमकिन और मुसलमानों की तज़लील बईद अज़ इमकान थी।(यानि मुसलमानों पर हमला करने के बारे में सोचना तक उनके लिये दिन में सपने देखने जैसा था।) इसके बरअक्स आज दुनिया में इस्लाम के वकार और मुसलमानों की हुरमतों का कोई पुरसाने–हाल नहीं। उसकी बुनियादी वजह यह है कि अहले–ईमान अपने इस अहमतरीन फ़र्जे–ऐन से ग़ाफ़िल हैं। उम्मत के पेशवाओं, क़ाईदीन, मुफ़क्करीन और अहले इल्म से इस सूरते–हाल में सवाल करना है कि उसे ज़िल्लत के इस गढ़े से निकालने के लिये उन्होंने क्या किया?

तू इधर–उधर की ना बात कर, यह बता कि काफ़िला क्यों लुटा?
मुझे रहज़नों से गिला नहीं, तेरी रहबरी का सवाल है !

क्या इस गुमगश्ता फ़रीज़े की तरफ़ दअवत देने की, इन्सानी माली वसाइल को इस जानिब लगवाने की नौबत अब भी नहीं आई, जबकि हदीसे–रसूल (ﷺ) के मिस्दाक़ अक़वामे–कुफ्र एक दूसरे को मुसलमानों पर हमले की दअवत इस तरह दे रही हैं जिस तरह भूखे दस्तरख्वानों पर एक दूसरे को खाने की दअवत देते हैं। उन्होंने खिलाफ़ते–उस्मानिया के टुकड़े कर दिये, दुनिया–ए–अरब की एक–एक रियासत को अपने ताबेअ किया। थाईलैण्ड फ़िलीपाईन, अराक़ान समेत कई मुस्लिम रियासतों को हड़प किया, मावरून्नहर, तुर्किस्तान की मुस्लिम ममलिकतें अपने करोड़ों अहले–ईमान समेत इश्तराकियों (इस्लाम दुश्मन ताक़तों) के लिये लुकम–ए–तर बन गईं। वहां लाखों लोग पहले ही सलीबी बना दिये गए थे, बाक़ी मान्दा करोड़ों मर्दो–ज़न इश्तिराकी और दहरी अक़ाइद (अल्लाह का सिरे से इन्कार, नास्तिकता) के शिकार हो गए, मश्रिकी तुर्किस्तान को चीनी तागूत ने निगल लिया। फिर गुलामी व ज़िल्लत के उस सफ़र में अम्बिया अलैहि सलातु–वत्तसलीम की सरज़मीन फ़िलीस्तीन हमसे छीनी गई, बलक़ान के मुमालिक इश्तिराकी व ईसाई सरबरियत व बर्बरियत का शिकार होते रहे। मस्जिदों की धरती बोस्निया, इज्तिमाई क़ब्रों की ज़मीन बन गई। इधर कश्मीर मुश्रिकीन की गुलामी में चला गया, अफ़गानिस्तान की इमारते–इस्लामिया हाथ से जाती रही और काबुल के पाया–ए–तख़्त पर यूरोपियन व अमेरिकी सलीबी व उनकी सलीबें क़ाबिज़ हो गईं। इस्लामी अज़मते–रफ़्ता की यादगार दारूल–खिलाफ़ा बग़दाद, सलीबियों की चरागाह बन गया। यही नहीं बल्कि अब तो पूरे आलमे–इस्लाम में जा–बजा सलीबी फौजी अड्डों का जाल बिछ चुका है और पूरी उम्मते–इस्लामिया अमलन उनके शिकन्ज–ए–क़हर में है।

इस वक़्त सूरते–हाल यह है कि अमेरिका से बाहर, सबसे बड़ा अमेरिकी फ़ौजी अड्डा और कहीं नहीं, बल्कि जज़ीरतुल–अरब, जज़ीर–ए–मुहम्मद (ﷺ) के एक मुल्क (क़तर) में है और सलीबी फ़ौजें कअबतुल्लाह से सिर्फ़ 45 मील दूर पर अपना अड्डा बनाकर मोर्चाज़न हैं! कहां हैं दअवते–दीन के अलमबरदार और इत्तिब–ए–सुन्नत के दाई ? क्या उनके सामने नबी मुहतरम (ﷺ) का यह फर्मान नहीं पहुंचा **मैं ज़रूर बिल ज़रूर यहूदो–नसारा को जज़ीर–ए–अ़रब से निकाल कर दम लूंगा, यहां तक कि मुसलमान के सिवा किसी को बाक़ी नहीं छोड़ंगा।** ***(मुस्लिम, किताबुल जिहाद, बाब–इख़राजो–यहूदो–नसारा मिन जज़ीरतुल अ़रब)***

अभी तो अइमतुल–कुफ्र से उन ज़ख्मों का हिसाब लेना भी बाक़ी था जब 1857 ईस्वी में हमारे 27000 उलमा व शुरफ़–ए–दिल्ली को चौकों और बाज़ारों में फांसियों पर लटकाया गया, जब हमारे तीन लाख कलमागो, ताजे–बरतानिया की अज़मत की बहाली की मुहिम की नज़र हुए और आज से पांच सौ साल पहले सक़ूते–उन्दलूस (स्पेन)

के मौक़े पर यूरोपियन सलीबियों ने जिस तरह मुसलमानों का ख़ून पानी की तरह बहाया,और लाखों लोगों को क़त्ल करके,बाक़ियों को जिस तरह बेपतिस्म(ईसाई बनाकर पाक करना)देकर ईसाईयत इख़्तियार करने पर मजबूर किया था,वो ज़ख्म तो क़यामत तक भुलाए ना जा सकेंगे। ***इमाम अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम शहीद रह.ने लिखा है कि पांच सौ साल से उन्दलूस कुफ्फार के क़ब्ज़े में है,तब से अब तक,उसे कुफ़्फ़ार के क़ब्ज़े से ना छुड़ाने का गुनाह मुसलमानों की गर्दनों पर मौजूद है।***

यह तो एक उन्दलूस का मुआमला है,जबकि आज तो बिलादे–इस्लामिया के शर्क़ो–ग़र्ब में कई उन्दलूस नज़र आते हैं। सवाल यह है कि हमारे साथ मुसलसल यह सब कुछ क्यों हो रहा है? इसलिये कि हम ईमान तो ले आए लेकिन उसकी हिफ़ाज़त के लिये न उठे,ना ही दीनो–दुनिया पर हमलावर होने वाले दुश्मन को पछाड़ने की कमाहक़्क़ा कोशिश की और ***अगर हममें से कोई उठा भी तो बाक़ी मुस्लिम दुनिया ने उसे उठने वालों का मुक़ामी मसअला समझा और दूसरों से यही कहा कि अभी तुम पर (जिहाद)फ़र्ज़े–ऐन नहीं हुआ,जो पिट रहे हैं अभी सिर्फ उन्हीं पर फ़र्ज़े–ऐन है ।*** (अगर सोवियत यूनियन के हमले के वक़्त यही जिहाद,जिहाद था तो अमेरिका व नाटो अफवाज़ के हमले के वक़्त वो ही ज़मीन, उन्ही लोगों के मुत्ताल्लिक़ यह जिहाद और उसकी रंगो–बू क्यों बदल गई? नतीजतन,एक–एक करके सारे बिलादे–इस्लाम कुफ्र के शिकन्जे में चले गए,शआइरे–इस्लाम मिटते रहे और यह सिलसिला आज तक जारी है। जबकि कुफ्फ़ार मिल्लते–वाहिदा बनकर एक दूसरे के मुईनो–मददगार हैं। इर्शादे–बारी तआला है..

وَالَّذِينَ كَفَرُوا بَعْضُهُمْ أَوْلِيَاءُ بَعْضٍ إِلَّا تَفْعَلُوهُ تَكُن فِتْنَةٌ فِي الْأَرْضِ وَفَسَادٌ كَبِيرٌ(73)

और जो लोग काफ़िर हैं वोह एक दूसरे के रफ़ीक़ हैं,अगर तुम यूं ना करोगे(यानि अहले–ईमान से रिफ़ाक़त नहीं निभाओगे) तो मुल्क में फ़ित्ना फैलेगा और बड़ी खराबी होगी।(सूरह–अनफ़ाल–73)

सच्ची बात यही है कि अगर उम्मते–मुस्लिमा ने इन जारेह (ज़ालिम)मुमालिक और अक़वाम के ख़िलाफ़ भरपूर अन्दाज़ में अपनी दिफ़ाई ज़िम्मेदारियां निभाई होतीं तो आज सूरते–हाल बहुत मुख़्तलिफ़ होती,और दुश्मन कब का इन इलाकों से निकल गया होता,और इस्लाम के ख़िलाफ़ काफ़िरों की जो जुर्रात आज हमें नज़र आती है वो हरगिज़ ना होती।

शरिअते–मुहम्मदी (ﷺ)को एक तरफ़ रखकर सोचने वाले रायपरस्त तो यही कहेंगे कि क्या करें हमारा उनका मुक़ाबला ही नहीं ? साईन्सी तरक्की और ईजादात में कुफ़्फ़ार की बराबरी किये बग़ैर उनसे निपटना मुम्किन है? हम उनसे पूछते हैं कि क्या फारसो–रूम जैसी,अपने

वक़्त की जाबिर क़ौमें साईन्सी तरक्की और ईजादात के ज़ोर पर मुसलमानों से मग़लूब हुई थीं? *हमारे लिये मिसाल हर हाल में मदीनतुन्नबी (ﷺ) की वो कच्ची बस्ती ही है जिसने क़ैसरो–किसरा जैसे ताग़ूतों के दाँत खट्टे कर दिये, ना कि कुर्तबा जैसे शहर जिनके फ़ने–तअमीर के नादिर नमूने, उलूमो–फुनून की करिश्मासाज़ियाँ दिफ़ाए–इस्लाम के कुछ काम न आ सकीं और यह सरज़मीनें फिर भी हमसे छीन ली गईं और आज यह बस्तियां हमारे लिये नमून–ए–इबरत के सिवा कुछ।* अलगर्ज़ हमारा मसअला, *वसाईल की कमी* नहीं, बल्कि उन हाथों की कमी है जो मयस्सर वसाईल को इस्तेमाल में लाएं, उन ज़ेहनों की कमी है जो फ़र्ज़े–मुक़द्दम को पहचानें, उन दिलों की कमी है जिनमें अल्लाह के सामने जवाबदेही का खौफ़ हो, उन आंखों की कमी है जिनसे निकलने वाले आँसू, महज़ आँसू ना हों, बल्कि वो बग़दादो–फ़िलिस्तीन, कश्मीरो–शीशान(चेचेन्या) और हेरातो–काबुल व कन्धार में बहने वाले खूने–मुस्लिम का मदावा भी बन सकें, ***जो नामूसे–मुहम्मद (ﷺ) की खातिर सिर्फ़ बातें ना बनाएं, कुछ करके भी दिखाएं !***

आज हमारे पड़ौस अफ़गानिस्तान में आलमी कुफ्र की अफ़वाज़ मौजूद हैं और अमेरिकी क़ब्ज़े को मुस्तहकम (मज़बूत व स्थाई) बनाए हुए हैं। इमारते–इस्लामिया अफ़गानिस्तान पर नाटो, इंसाफ़ वग़ैरह के क़ालिब में किया जाने वाला सलीबी हमला अमेरिका व यूरोप की तरफ़ से इस्लाम पर मुसल्लतकर्दा वोह जंग का अहमतरीन मुहाज़ है। इसलिये कि इस्लाम की मुहब्बत, शरीअत की तन्फ़ीज़ और आलमे–इस्लाम के मुहाजरीन की मेज़बानी मुसलमानाने–ख़ुरासान के वो **जुर्म** हैं, जो आलमी कुफ्र की हज़ीमत(व यलग़ार) का सामान बन गए। अमेरिका और बरतानिया समेत 40 के क़रीब मुमालिक जो नाटो और उसके इत्तिहादी हैं, अफ़गानिस्तान पर अमेरिकी क़ब्ज़े में शरीक हैं। यह दरअसल एक बड़ी मुहिम का हिस्सा है। उनका हदफ़ सिर्फ़ वो जरी अफ़ग़ान क़ौम ही नहीं जिसने दस साल तक रूसी अफ़रियत(ज़ुल्मो–ज़्यादती) का मुक़ाबला अपनी हिम्मते–ईमानी के बल पर किया और सुर्ख़ रीछ को घर से बेघर किया, बल्कि उनकी पड़ौसी मेज़बान कौम भी है जिसने उनके लाखों मुहाजरीन को पनाह दी, वही क़ौम जिसने ***लाइलाह इल्ललल्लाह*** की बुनियाद पर एक मुल्क तशकील दिया, जो एक जानिब मग़िरब में आलमी सलीबी इत्तिहादियों के लश्कर से, मश्रिक में **हुनूद** से, शुमाल में देहरियों से और जुनूबी बानियों में **अज़ीमतर इस्राईल** के मुहाफ़िजों से घिरी हुई है, जो हर मुहाज़ पर अग़यार की इस्लामदुश्मनी का नतीजा–ए–मश्क़ बनी हुई है लेकिन फिर भी समझती है कि **हमारी बारी नहीं आएगी !..**

इस वक़्त इस्लामी इमारते–अफ़ग़ानिस्तान पर हमले और क़ब्ज़े में शरीक ज़्यादह तअदाद तो ***अमेरिका, बरतानिया, जर्मनी इटली, केनेडा, और फ्रांस की फौजों की है लेकिन ऑस्ट्रेलिया, ऑस्ट्रिया, बेल्जियम, क्रोएशिया, चेक– रिपब्लिक डेनमार्क, एस्टोनिया फिनलैण्ड, मकदूनिया (साबिक़ा यूगोस्लाविया) यूनान, हंगरी, आइसलैण्ड, आयरलैण्ड, लातविया, लिथुआनिया, लक्ज़मबर्ग, हॉलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, नार्वे, पौलेण्ड, पुर्तगाल, रोमानिया, स्लोवाकिया, स्लोवेनिया, स्पेन,***

स्वीडन, और स्वीटज़रलैण्ड, भी शामिल हैं। अमेरिका के बिलमुक़ाबिल यूरोप को अपना **हमदर्द** समझने वाले सादा लोहों को इस फेहरिस्त पर एक बार ज़रूर ग़ौर कर लेना चाहिए। हक़ीकत में मग़रिब अफ़गानिस्तान में अपनी तहज़ीब के बक़ा की जंग लड़ रहा है लेकिन पसपाई उसका मुक़द्दर है, इंशाअल्लाह। **वल्लाहु अ़ला कुल्ली शैईन क़दीर .**

उधर, इनमें से बेशतर सलीबी अक़वाम इराक़ में भी इस्लामियाने–उम्मत के खिलाफ़ पूरी यकसूई से बरसरे–पैकार हैं। यहां उनकी कुल तअदाद तक़रीबन 26 है। मश्रिकी यूरोप की सलीबी अक़वाम केसाथ–साथ जापान जैसा ग़ैर–असकरी (हथियारविहीन) मुल्क भी इस जंग में सलीब के मोर्चो में है, जबकि चीन बज़ाहिर मग़रिब मुखालिफ़ होते हुए भी हर क़रारदादे–जुल्म में आलमी कुफ़्र का शरीक होता है। सलीबी जंग का एक मश्रिकी मुहाज़ शीशान(चेचेन्या) में खुला हुआ है और यह दुश्मन के वो मोर्चे हैं जो सबकी निगाहों में हैं लेकिन वो यलग़ार जो तअलीम, इक़्तिसाद, अबलाग़ियात (जनसम्पर्क व सूचना माध्यम), सक़ाफ़त, अफ़कार और तअलुक़्क़ाते–आम्मा समेत दूसरे खुफ़िया मुहाज़ों पर जारी है उसका अहसास कितनों को है ?और कितने उसके मुकाबले के लिये तैयार हैं?

मुश्किल की इस घड़ी में मुबारक हैं वोह लोग जो अपनों की बेअतनाई(बेरूखेपन व बेपरवाही) के बावजूद इस्लाम और मुस्लिम सरज़मीनों की दिफ़ाअ कर रहे हैं, मलामत करने वालों की मलामत से बेपरवाह अपने सरों की फ़सीलें कटाए जा रहे हैं, उम्मत को ज़िल्लत के गढ़े से निकालने के लिये खुद अपनी तौहीन बर्दाश्त कर रहे हैं। दुनियावी ज़िन्दगी के इन झमेलों, क़ब्र की तंगो–तारीक कोठरियों में, और क़यामत की हौलनाकियों में अल्लाह की मअय्यत (मदद) उनके साथ है, फ़रिश्ते उनके दोस्त हैं, इंशाअल्लाह। और यह सब मशक़्क़तें दुनिया व आख़िरत में उनके खूब काम आएंगी क्योंकि यही तो वोह लोग हैं जो सबसे बढ़कर अपने मालिक की रहमत के उम्मीदवार हैं।

إِنَّ الَّذِينَ آمَنُوا وَالَّذِينَ هَاجَرُوا وَجَاهَدُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ أُولَٰئِكَ يَرْجُونَ رَحْمَتَ اللَّهِ وَاللَّهُ غَفُورٌ رَّحِيمٌ (218)

बेशक जो लोग ईमान लाए और जिन्होंने हिजरत की और अल्लाह की राह में लड़े, वोह अल्लाह की रहमत के उम्मीदवार हैं और अल्लाह बख्शने वाले, मेहरबान हैं। (अलबक़रह–218)

अल्लाह अज़्ज़ो–वजल की रहमत के तलबगार यह लोग दुनिया में दअवते–इस्लामी की सरबुलन्दी के ख़्वाब देखने वाले हैं। **एक ऐसा ख़्वाब जिसकी तअबीर पर हमारा यक़ीन इससे कहीं ज़्यादा है जितना यक़ीन हमें कल के सूरज के तुलूअ होने पर है !** सच यह है कि वोह उम्मत जिसका मक़सदो–वुजूद बतौरे–उम्मत है ही यह कि इस दुनिया से मुनकर को ख़त्म करे, नेकी का चलन आम करे वोह अपने असासी फ़रीज़े से कभी सुबुकदोश नहीं हो सकती। उसके सभी वाबस्तगान को घूम–फिरकर उसी लायह–

ए–अमल की तरफ़ आना है जो अज़ल से उसके लिये मुक़र्रर है।

كُنتُمْ خَيْرَ أُمَّةٍ أُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ تَأْمُرُونَ بِالْمَعْرُوفِ وَتَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنكَرِ وَتُؤْمِنُونَ بِاللَّهِ وَلَوْ آمَنَ أَهْلُ الْكِتَابِ لَكَانَ خَيْرًا لَّهُم مِّنْهُمُ الْمُؤْمِنُونَ وَأَكْثَرُهُمُ الْفَاسِقُونَ **(110)**

तुम आलम में भेजी गई सब उम्मातों से बेहतर हो। अच्छे कामों का हुक्म करते हो और बुरे कामों से मना करते हो और अल्लाह पर ईमान लाते हो।

(आले–इमरान, 110)

जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह की दो अक़्साम

कुफ़्फ़ार के ख़िलाफ जिहाद की दो अक़्साम हैं :

1. इक़्दामी जिहाद (जिहादुल्तलब)

2. दिफ़ाई जिहाद (जिहादुल्दिफाअ)

1. इक़्दामी जिहाद (जिहादुल्तलब) का मतलब है :

"यानी खुद जंग की इब्तदा करते हुए कुफ्फार के इलाक़े में घुसकर उन पर हमला करना, जबकि वोह मुसलमानों के ख़िलाफ क़िताल के लिए तैयारी भी न कर रहे हों।"

ऐसे हालत में जिहाद, फर्ज़े–किफाया होता है, जिसकी अदाएगी का कम से कम दर्जा ये है कि :

1. सरहदों पर अहले–ईमान की इतनी तादाद हर वक़्त मौजूद रहे जो सरज़मीने–इस्लाम की दिफाअ और अल्लाह के दुश्मनों पर दहशत बढ़ाने के लिए काफी हों।

2. साल में कम से कम एक मर्तबा मुसलमान फौज को कुफ्फार के खिलाफ लड़ने के लिए ज़रूर भेजा जाए।

लिहाजा मुसलमानों के इमाम की ज़िम्मेदारी बनती है कि वोह साल में एक या दो मर्तबा दारूलहरब की सिम्त लश्कर रवाना करे और रिआया का फर्ज बनता है कि वोह इस सिलसिले में इमाम के साथ तआवुन करे। लेकिन अगर इमाम किसी लश्कर को नहीं भेजता तो गुनाह का बोझा उसी पर होगा।

फुक़हा (साल में एक मर्तबा लश्कर भेजने के) इस मसले को जिज़्ये के मसले पर क़यास करते हैं। उलमाए–उसूल फर्माते हैं :

"जिहाद कुव्वत व ग़लबे के ज़रिए दावत फ़ैलाने का नाम है। पस जिहाद

को इस्तिताअत भर क़ायम करना फ़र्ज़ है यहां तक कि कोई ऐसा शख़्स बाक़ी न रहे जो मुसलमान न हो या फिर मुसलमानों से मसालिहत (समझौता) न कर चुका हो।''
(हाशिया अशशिरवानी, व इब्नुल क़ासिम, अला तुहफ़तुल मुहताज अलल मिनहाज)

दिफाई जिहाद (जिहादुद्दिफाअ) और उसका शरई हुक्म

दिफाई जिहाद (जिहादुद्दिफाअ) से मुराद है :

''यानी कुफ्फार को मुसलमानों के इलाकों से बाहर निकालने के लिए जिहाद। दिफाई जिहाद फर्ज़े–ऐन, बल्कि अहमतरीन फर्ज़े–ऐन है। चार सूरतें ऐसी हैं कि जिनमें दिफाई जिहाद तअय्युन(निर्धारण) के साथ हर एक पर फर्ज़ हो जाता है :

1. जब कुफ्फार मुसलमानों के किसी भी इलाक़े में घुस आएं।

2. जब कुफ्र व इस्लाम के लश्करों का आमना सामना हो और दोनों तरफ की सफें एक–दूसरे से टकरा जाएं।

3. जब इमाम कुछ अफराद या किसी क़ौम से जिहाद के लिए निकलने का मुतालबा करे, तो उन सब पर जिहाद फर्ज़ हो जाता है, कि निकलें।

4. जब कुफ्फार कुछ मुसलमानों को क़ैद कर लें।

जब कुफ़्फ़ार मुसलमानों के किसी इलाक़े में घुस आएं

सलफ व ख़लफ, चारों फिक़ही मज़ाहिब के उलमा, मुहद्दिसीन और मुफस्सिरीन, तारीख़े–इस्लामी के तमाम अदवार(दौरों) में इस बात पर ग़ैर–मशरूत (पहले से मुतय्यन) तौर पर मुत्तफिक़ रहे हैं कि अगर कुफ़्फ़ार मुसलमानों के किसी भी इलाक़े में घुस आएं तो वहां बसने वालों और उनके कुर्बो–जवार(आस–पास)में रहने वालों पर जिहाद फर्ज़े–ऐन हो जाता है। ऐसे हालात में औलाद वालदैन की, बीवी, शौहर की और मक़रूज़, कर्ज़ख़्वाह की इजाज़त के बग़ैर जिहाद के लिये निकलेंगे।

अगर दुश्मन को पछाड़ने के लिए ये सब लोग नाकाफी साबित हों या ये लोग कोताही करें, या सुस्ती से काम लें, या बिलाउज़्र बैठे रहें तो ये फर्ज़ियते–ऐन दायरे की शक्ल में अगले इलाकों तक फैलती जाएगी, पहले सबसे करीब वालों को अपनी लपेट में लेगी, फिर उनसे करीब वालों को। फिर अगर वोह लोग भी नाकाफी हों या कोताही करें (और मज़ीद मुजाहिदीन की ज़रूरत बरक़रार रहे) तो फर्ज़ियत का ये दायरा बतदरीज आगे फैलता जाएगा यहां तक कि (ज़रूरत पड़ने पर) पूरी ज़मीन के मुसलमानों को अपनी लपेट में ले लेगा शैखुल–इस्लाम इब्ने–तैमिया रह. फर्माते हैं :

''और जहां तक बात है ''दिफाई क़िताल''की तो हुर्मतों और दीन पर हमलावर दुश्मन को पछाड़ने के लिए ये क़िताल की अहमतरीन क़िस्म है और इसीलिए इसके फर्ज़

होने पर उम्मत का इज्माअ है। ***ईमान लाने के बाद सबसे अहमतरीन फरीज़ा दीन व दुनिया को बर्बाद करने वाले हमलावर दुश्मन को पछाड़ना है।*** इस फर्ज़ियत के लिए कोई शराइत नहीं (मसलन ज़ादे–राह और सवारी मौजूद होने की शर्त भी साक़ित हो जाती है)बल्कि जिस तरह भी मुमकिन हो दुश्मन को पछाड़ा जाएगा। ये बात उलमा ने सराहतन कही है, ख़्वाह वोह हमारे मज़हबे–फिक़ही के उलमा हों, या दीगर फिक़ही मज़ाहिब के।'

(फ़तावा अल–कुबरा,4/520)

इमाम इब्ने–तैमिया रह. के दौर में एक क़ाज़ी ने ये कहा कि :

''जब किसी इलाक़े वालों पर जिहाद फर्ज़े–ऐन हो जाए तो जो लोग उस इलाक़े से क़सर की मुसाफत पर रहते हैं उन पर, हज की तरह,जिहाद भी सिर्फ उसी सूरत पर फर्ज़ होगा जब उनके पास ज़ादे–राह और सवारी मौजूद हो।''

क़ाज़ी ने जिहाद को हज पर क़यास करते हुए जिस राए का इज़्हार किया है वह इससे पहले किसी आ़लिम से मन्कूल नहीं। ये निहायत कमज़ोर राए है क्योंकि जिहाद इसलिए फर्ज़ किया गया है ताकि दुश्मन के शर को दूर किया जा सके, ***लिहाज़ा जिहाद की फर्ज़ियत हिजरत से भी बढ़कर है।***

अब जबकि हिजरत के लिए सवारी की शर्त नहीं तो जिहाद के लिए ये शर्त बदर्जा–ए–अव्वल साक़ित होगी।

हज़रत उबादा बिन सामित रजि. से एक सहीह हदीस में मर्वी है कि रसूलल्लाह (ﷺ) ने फर्माया :

''बन्दा–ए–मोमिन पर हुक्म सुनना और इताअ़त करना वाजिब है, चाहे उसे तंगी हो या आसानी, खुशी हो या नागवारी और चाहे दूसरों को उस पर तर्जीह दी जाए।''

चुनांचे ये हदीस इताअ़ते–हुक्म को लाज़िम क़रार देती है और तंगी व आसानी, हर हाल में जिहाद के लिए निकलने को फर्ज़ ठहराती है। ये फर्माने–नबवी (ﷺ) इस मामले में नस(बुनियाद) की हैसियत रखता है और ये इस बात की वाज़ेह दलील भी है कि हज के बर–खिलाफ, जिहाद तंगी के आ़लम में भी फर्ज़ रहता है। तंगी या आसानी, हर हाल में निकलने का ये हुक्म इक़्दामी क़िताल के हवाले से है और अगर मामला–ए–दिफाअ़ क़िताल का हो तो वोह हुर्मतों और दीन पर हमलावर दुश्मन को पछाड़ने की ख़ातिर क़िताल की अहमतरीन क़िस्म है और इसके फर्ज़ होने पर पूरी उम्मत का इज्माअ़ है। ईमान लाने के बाद सबसे अहम फरीज़ा यही है कि दीन व दुनिया को बर्बाद करने वाले हमलावर दुश्मन को पछाड़ा जाए, लिहाज़ा वहां ज़ादे–राह और सवारी की शर्त लगाने का सवाल ही नहीं पैदा होता।'' **(मिन किताबिल–इख़्तियारात, अल इलमिया लि इब्ने तैमिया, मुलहक़ बिल फ़तावा अलकुबरा, 4/608)**

मसल–ए–ज़ेरे–बहस में, चारों इमामों की राय

आइये, अब इस मसले से मुताअलिक चारों मज़ाहिबे–फ़िक़ही की आराए (रायों) पर एक नज़र डालें।

(अ) अलफ–हनफ़िया की राए –:

इब्ने–आबिदीन रह. फर्माते हैं :

''अगर दुश्मन किसी भी इस्लामी सरहद पर हमलावर हो जाए तो(वहां बसनेवालों पर) जिहाद फर्ज़े–ऐन हो जाता है। इसी तरह उनके क़ुर्बो–जवार में बसनेवालों पर भी जिहाद फर्ज़े–ऐन हो जाता है। अल्बत्ता जो लोग उनसे पीछे, दुश्मन से फासले पर बसते हों, तो जब तक उनकी ज़रूरत न पड़े उन पर जिहाद फर्ज़े–किफाया ही रहता है। लेकिन अगर किसी भी वजह से उनकी ज़रूरत पड़ जाए, मसलन : जिस इलाक़े पर हमला हुआ है उसके क़ुर्बो–जवार में रहने वाले लोग दुश्मन के खिलाफ मज़ाहिमत (प्रतिरोध) करने में बेबस हो जाएं, या बेबस तो न हों लेकिन अपनी सुस्ती की वजह से जिहाद न करें तो ऐसी हालात में उनके इर्द–गिर्द बसनेवालों पर भी जिहाद,नमाज़ और रोज़े की तरह फर्ज़े–ऐन हो जाता है और उसे तर्क करने की कोई गुंजाइश बाक़ी नहीं रहती। फिर फर्ज़ियत का ये दायरा उसके बाद और फिर उसकेबाद वालों तक हस्बे–ज़रूरत फैलता जाता है यहां तक कि इसी तदरीज से बढ़ते हुए एक वक़्त मशरिक़ व मग़रिब में बसने वाले हर मुसलमान पर जिहाद फर्ज़ हो जाता है।'' **(हाशिया इब्ने–आबिदीन : 3/238)**

इमाम कासानी रह.(बदाइउस्सनाअ 7/72) इब्ने–नजीम रह. (अल बहरूल राइक़,लि– इब्ने–नजीम191/5)और इब्ने–हमाम रह.(फ़तहुल क़दीर, इब्ने–हुमाम191/5) ने भी ऐसे ही फतावे दिए हैं।

(ब) मालकिया की राए –:

''हाशिया–अद्दुसूक़ी'' में दर्ज है कि :

'' दुश्मन के अचानक हमले की सूरत में जिहाद फर्ज़े–ऐन हो जाता है, दसूकी रह. फर्माते हैं : दुश्मन के अचानक हमले की सूरत में दिफाअ करना हर एक की जिम्मेदारी बन जाती है, ख़्वाह कोई औरत, गुलाम या बच्चा ही क्यों न हो और चाहे शौहर,आक़ा या क़र्जख्वाह उन्हें मना करें, ये फिर भी निकलेंगे।'' **(हाशिया–अद्दुसूक़ी–2/174)**

(स) शाफिया की राए –:

अलरम्ली रह. **''नहायतुलमुहताज''** में लिखते हैं :

''अगर कुफ्फार हमारे इलाक़े में घुस आएं और हमारे और कुफ्फार के दर्मियान क़सर की मुसाफत रह जाए तो इस मुसाफ़त के अन्दर बसने वाले सब मुसलमानों के लिए दिफाअ करना लाज़िम होगा, हत्ताकि वोह लोग जिन पर आम तौर पर जिहाद फर्ज़ नहीं

होता, यानी फ़क़ीर, कम उम्र बच्चा, गुलाम, मक़रूज़ और औरत, अब उन पर भी लाज़िम होगा कि वह दिफ़ाअ करें।'' (नहायतुल मुहताज–8/58)

(द) हम्बला की राए –:

इब्ने–क़ुदामा रह. अलमुग़नी में रक़म तराज़ हैं :

''तीन सूरतों में जिहाद फ़र्ज़े–ऐन हो जाता है :

1. जब कुफ़्फ़ार व इस्लाम के लश्करों का आमना–सामना हो और दोनों तरफ की सफें एक–दूसरे से टकरा जाएं (तो वहां मौजूद हर मुसलमान पर जिहाद फ़र्ज़े–ऐन हो जाता है।)

2. जब कुफ्फार किसी इलाक़े पर हमलावर हो तो उसके (रहनेवालों) पर फर्ज़े–ऐन हो जाता है कि वोह उनके खिलाफ क़िताल करें और उन्हें बाहर निकालें।

3. जब इमाम किसी (फ़र्द या अफ़राद) को जिहाद के लिए पुकारें तो उन पर फर्ज़ हो जाता है कि वोह निकल खड़े हों।

इमाम इब्ने–तैमिया रह. फर्माते हैं :

''जब दुश्मन इस्लामी सरज़मीन में घुस आए तो बिलाशुब्हा उसे निकाल बाहर करना क़रीबी आबादियों पर,और अगर वोह न निकाल सकें तो उसके बाद वाली क़रीबी आबादियों पर फर्ज़ हो जाता है, क्योंकि मुसलमानों के तमाम इलाक़ों की हैसियत दरअसल एक ही मुल्क की सी है। ऐसी हालत में वालिद और क़र्ज़ख़्वाहों की इजाज़त के बग़ैर निकलना फर्ज़ हो जाता है। इस बारे में इमाम अहमद रह. की राए बिल्कुल वाज़ेह है।

(अल फतावा अल कुबरा–4/608)

मज़कूरा बाला सूरते–हाल में, यानी जब दुश्मन मुसलमानों के किसी इलाक़े पर हमला कर दे, हर एक पर जिहाद के लिए निकलना फर्ज़ हो जाता है। इस हुक्म को शरिअत की इस्तिलाह में ''नफ़ीरे–आम''कहा जाता है।

नफ़ीरे–आम (सबके निकलने) के दलाईल

1. निकलो, चाहे हल्के हो या बोझल

अल्लाह अज़्ज़ु वजल का फर्मान है,

انْفِرُوا خِفَافًا وَثِقَالًا وَجَاهِدُوا بِأَمْوَالِكُمْ وَأَنفُسِكُمْ فِي سَبِيلِ اللَّهِ ذَٰلِكُمْ خَيْرٌ لَّكُمْ إِن كُنتُمْ تَعْلَمُونَ(41)

''निकलो, ख़्वाह हल्के हो या बोझल और जिहाद करो अल्लाह के रास्ते में अपने मालों और अपनी जानों से, अगर तुम जानते हो तो यही तुम्हारे लिए बेहतर है।' (सूर : तौबा :41)

इससे पिछली आयते–मुबारका ये बात वाज़ेह करती है कि जो लोग नफ़ीरे–आम के हुक्म की पैरवी नहीं करते और जिहाद के लिए नहीं निकलते,वो अज़ाबे–इलाही के मुस्तहिक हो जाते हैं और अल्लाह तआला सज़ा के तौर पर उनको हटाकर उनकी जगह दूसरे लोगों को ले आता है और ये बात अहले–इल्म से पोशीदा नहीं कि अज़ाब की वईद किसी हराम के इर्तकाब(कर गुज़रने) या किसी फर्ज़ के तर्क करने ही पर सुनाई जाती है।

إِلَّا تَنفِرُوا يُعَذِّبْكُمْ عَذَابًا أَلِيمًا وَيَسْتَبْدِلْ قَوْمًا غَيْرَكُمْ وَلَا تَضُرُّوهُ شَيْئًا وَاللَّهُ عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ(39)

''अगर तुम न निकले तो अल्लाह तुम्हें दर्दनाक अज़ाब देगा और तुम्हारी जगह कुछ और लोगों को ले आएगा और तुम उसे कुछ नुक़सान न पहुंचा सकोगे और यक़ीनन अल्लाह हर शै पर क़ादिर है।'' (सूर : तौबा : 39)

इब्ने–कसीर रह. इस आयत की तशरीह में लिखते हैं :

''अल्लाह तआला ने ग़ज़वा–ए–तबूक के मौक़े पर मुसलमानों को रसूलल्लाह (ﷺ)के साथ नफ़ीरे–आम (यानी तमाम मुसलमानों को निकलने) का हुक्म दिया, ताकि अल्लाह के दुश्मनों,अहले–किताब रूमी काफ़िरों के खिलाफ जंग की जाए। इमाम बुख़ारी ने इस आयते–मुबारक को अपनी किताब में इस उन्वान के तहत ज़िक्र किया है :

''सब मुसलमानों के निकलने का वाजिब होना और जिहाद और उसकी नीयत से मुताअलिक वाज़िब उमूर।'' वाक़िया यह है कि जब मुसलमानों के कानों तक ये बात पहुंची कि ईसाई लश्कर मदीना पर हमले के लिए ज़ज़िरा–ए–अरब की सरहदों

पर जमा हो रहा है तो अल्लाह तआला ने *नफ़ीरे–आम* का हुक्म दे दिया। **अगर महज़ इस वजह से तमाम मुसलमानों को जिहाद के लिए निकलने का हुक्म दे दिया गया कि दुश्मन सरहदों पर जमा हो रहा है, तो उस वक़्त क्या हुक्म होगा जब कुफ्फार अमलन मुसलमानों के इलाक़े में घुस आएं ? क्या ऐसे हालात में नफ़ीरे–आम बदर्जा–ए–अव्वल फर्ज़ नहीं होगा ?**

हज़रत अबूतल्हा रज़ि. ने अल्लाह तआला के फर्मान(निकलो, ख़्वाह हल्के हो या बोझल) की तशरीह करते हुए फर्माया :

***''अधेड़ उम्र हो या जवान (सब को निकलना होगा, क्योंकि) अल्लाह ने किसी का उज़्र क़बूल नहीं किया।''*(मुख्तसर, इब्ने–कसीर 144/2)**

इमाम हसन बसरी रह. इसी फर्माने–इलाही की तशरीह में फर्माते हैं :

''फ़िल उसरि वल युसरा।''

''तंगी व आसानी, दोनो हालतों में निकलना फर्ज़ है।''

इमाम इब्ने–तैमिया रह. ''**मजमुआ अल फ़तावा**''में फरमाते हैं।

''बस अगर दुश्मन मुसलमानों पर हमले का इरादा करे तो उसे दफा करना सब पर फर्ज़ होगा, उन पर भी जो हमले का हदफ हों और उन पर भी जो हदफ न हों और जैसा कि अल्लाह तआला का फर्मान है

وَإِنِ اسْتَنصَرُوكُمْ فِى الدِّينِ فَعَلَيْكُمُ النَّصْرُ(72)

''और अगर वो दीन के मामले में तुमसे मदद मांगे तो उनकी मदद करना तुम पर फर्ज़ है।'' (अल अनफ़ाल–72)

जैसा कि नबी (ﷺ)ने भी (कई अहादीसे–मुबारका में)मुसलमानों की मदद करने का हुक्म दिया है। ये हुक्म सबके लिए है, ख़्वाह कोई बाक़ायदा तनख्वाह–दार फौजी हो या आम मुसलमान,हर एक पर हसबे–इस्तिताअत जान व माल से दिफाई जिहाद करना फर्ज़ है, चाहे क़िल्लत हो या कसरत,सवारी मयस्सर हो या पैदल ही निकलना पड़े। बिल्कुल इसी तरह जैसे **ग़जवाए–ख़न्दक़ के मौक़े पर जब दुश्मन ने मुसलमानों का रूख़ किया तो अल्लाह तआला ने किसी को भी जिहाद से पीछे रहने की इजाज़त नहीं दी।''(मजमुआ अल फ़तावा 358/28)**

इमाम जौहरी रह. फर्माते हैं :

''हज़रत सईद बिन मुसय्यब रह. जंग के लिए निकले, हालांकि उनकी एक आंख पहले ही जंग की नज़र हो चुकी थी।''आपसे कहा गया : आप माअज़ूर हैं, आप आराम कीजिए, निकलने को और बहुत से लोग मौजूद हैं। फर्माया : नहीं, अल्लाह ने ख़फ़ीफ़ व सक़ील, हर शख़्स को निकलने को कहा है। अगर मैं जंग

नहीं कर सकता तो क्या हुआ, मुजाहिदीन की तादाद में इज़ाफे का सबब ही बन जाऊंगा और उनके सामान की हिफाज़त करूंगा।''

(अल–जामेअ, लि–अहकामुल–कुर्आन)

2. तुम सब उन सबसे लड़ो।

अल्लाह अज़्ज़वजल का फर्मान है :

وَقَاتِلُوا الْمُشْرِكِينَ كَافَّةً كَمَا يُقَاتِلُونَكُمْ كَافَّةً وَاعْلَمُوا أَنَّ اللَّهَ مَعَ الْمُتَّقِينَ(36)

''और इन मुश्रिकीन से सब मिलकर लड़ो जैसा कि वोह सब मिलकर तुम से लड़ते हैं और ये जान रखो कि अल्लाह तआला मुत्तक़ियों का साथी है।''

(सूर : तौबा 36)

इब्ने अल–अरबी रह. फरमाते हैं, ''(इस आयत में वारिद होने वाले लफ्ज़) **''काफ़तन''** से मुराद : **हर जानिब से और हर हालत में उन्हें घेरते हुए (उनसे जंग करो)।'(अल जामेअ लि अहकामुल कुर्आन)**

3. फितने के ख़ात्मे तक जिहाद फर्ज़ है।

अल्लाह अज़्ज़वजल का फर्मान है :

وَقَاتِلُوهُمْ حَتَّى لَا تَكُونَ فِتْنَةٌ وَيَكُونَ الدِّينُ كُلُّهُ لِلَّه(39)

''और उनसे क़िताल करते रहो यहां तक की फित्ना बाक़ी न रहे और दीन पूरे का पूरा अल्लाह ही का हो जाए।'' (सूर : अन्फाल : 39)

यहां फ़ित्ने से मुराद शिर्क है, जैसाकि हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास रजि. और अस्सदी रह. वगैरह ने वाज़ेह तौर पर लिखा है:

''बिलाशुब्हा जब कुफ्फार हमलावर हों और हमारे इलाक़े पर क़ब्ज़ा कर लें तो उम्मत का दीन दांव पर लग जाता है और अक़ीदा खतरे में पड़ जाता है। बस ऐसे हालात में दीन, नफ़्स, इज़्ज़त और माल को बचाने के लिए क़िताल फर्ज़ हो जाता है।''

4. जब भी जिहाद के लिए निकलने का तक़ाज़ा हो।

रसूले–अकरम (ﷺ) का फर्मान है :

''फतहे(मक्का) के बाद (मक्के से मदीना) हिजरत बाक़ी नहीं रही, लेकिन जिहाद और इसकी नीयत अब भी बाक़ी है और जब तुम से नफ़ीर (यानी जिहाद के लिए निकलने) का तक़ाजा किया जाए तो निकल पड़ो।''

(बुख़ारी क़िताबुल–जिहाद)

लिहाज़ा उम्मत से जब भी नफ़ीरे–आम (यानी सबके निकलने) का मुतालबा हो तो सब मुसलमानों पर फर्ज़ हो जाता है कि वह जिहाद के लिए निकलें ,और बिलाशुब्हा कुफ्फार के हमले की सूरत में शरीअत मुसलमानों से यही मुतालबा करती है।

नफ़ीरे–आम (सबका निकलना) दो सूरतों में फर्ज़ हो जाता है –

1. जब इमाम जिहाद के लिए पुकारे।

2. जब मुसलमानों को मदद की ज़रूरत पड़ जाए (ख़्वाह कोई पुकारे या न पुकारे।)

जैसा कि इब्ने–हजर रह. इस हदीस की तशरीह में इमाम कुर्तबी रह. के हवाले से लिखते हैं :

"हर वोह शख़्स जिसके इल्म में ये बात आ जाए कि मुसलमान अपने दुश्मन के मुक़ाबले में कमज़ोर है और वोह ये भी जानता हो कि उसके लिए उन तक पहुंचना और उनकी मदद करना मुमकिन है, तो उस पर लाज़िम होगा कि वोह उनका साथ देने के लिए (चाहे कोई उसे पुकारे या न पुकारे) निकल पड़े।" **(फ़तहुल–बारी, 30/6)**

इसी मसले की वज़ाहत करते हुए शाह वलीउल्लाह मुहद्दिस देहलवी रह. **"मुअत्ता इमाम मालिक रह."** की शरह में लिखते हैं : "जरूरी नहीं की कोई ख़ास शख़्स मुसलमानों को ये कहकर पुकारे कि *"आओ जिहाद करो।"* मक़्सूद ये है कि ऐसी हालत पैदा हो जाए जो नफ़ीरे–आम का तक़ाज़ा कर रही हो। बस जब काफिरों ने इस्लामी मुल्कों (पर हमले) का क़सद(इरादा) किया और मुसलमानों और काफिरों में लड़ाई शुरू हो गई तो जिहाद फर्ज़ हो गया और जब दुश्मनों की ताक़त उन मुमालिक के मुसलमानों से ज्यादा क़वी हुई और मुसलमानों की शिकस्त का ख़ौफ हुआ, तो यके बाद दीगरे (एक के बाद दूसरे) तमाम मुसलमानाने–आलम पर जिहाद फर्ज़ हो गया, *ख़्वाह कोई पुकारे या न पुकारे। यही हाल तमाम फराइज़ का है। नमाज़ का जब वक़्त आ जाए तो ख़्वाह मुअज़्ज़िन की सदा–ए–हय्याअलस्सलाह सुनाई दे या न दे, वक़्त का आना वुजूब के लिए काफी होता है। (मुतर्जिम)*

5. ज़रूरियाते–ख़म्सा की हिफाज़त फर्ज़ है।

अल्लाह की तरफ से नाज़िल होने वाला हर दीन **"पांच बुनियादी ज़रूरियात"** की हिफाज़त के लिए आया है, जिन्हें शरिअत की इस्तलाह में **"ज़रूरियाते–ख़म्सा"** कहा जाता है, यानी :

(1) दीन (2) जान (3) इज़्ज़त (4) अक़्ल (5) माल

चुनांचे इन ज़रूरियाते–ख़म्सा की हर मुमकिन तरीक़े से हिफ़ाज़त करना फर्ज़ है। इस्लाम ने **"अदुव्वे–साइल"** **(हमलावर दुश्मन)** के मुक़ाबले का हुक्म भी इसीलिए दिया है ताकि उन ज़रूरियात की हिफ़ाज़त की जा सके।

(जामेअ लि अहकामुल–कुर्आन, 150/8)

(ज़रूरियाते–ख़म्सा की ये तर्तीब हमेशा पेशे–नज़र रहनी चाहिए। इस तर्तीब के

मुताबिक़ दीन की हिफ़ाज़त जान, इ़ज़्ज़त, अक़्ल और माल, सबकी हिफ़ाज़त पर मुक़द्दम (श्रेष्ठ) है। इसीलिए अगर कुफ़्फ़ार हमलावर हों और **दीन दांव पर लग जाए** तो शरिअत यही हुक्म देती है कि दिफ़ाऐ–दीन की ख़ातिर अपना सब कुछ हत्ताकि अपनी जान तक कुर्बान कर दी जाए, और ***ये तजज़िया (विश्लेषण) करने में वक़्त न ज़ाया किया जाए कि क़िताल करने से फ़ायदा ज़्यादा होगा या नुक़सान, क्योंकि इस्लाम की निग़ाह में दीन के नुक़सान से बड़ा और कोई नुकसान नहीं।*** इसी तर्तीब को पेशे–नज़र रखा जाए तो मुसन्निफ कि ये बात समझना भी आसान हो जाती है कि **''अदुव्वे–साइल''** के ख़िलाफ दिफाई जिहाद महज़ फर्ज़े–ऐन ही नहीं, अहमतरीन फर्ज़े–ऐन है। (मुतर्जिम)

''अदुव्वे–साइल से मुराद वोह दुश्मन है जो किसी दूसरे की जान, माल या इ़ज़्ज़त के दरपे हुआ और उसे बज़ोर मग़्लूब करने के लिए उस पर हमला करे।''

(अ) इ़ज़्ज़त पर हमलावर दुश्मन के ख़िलाफ दिफाअ़ !

फुक़हा इस बात पर मुत्तफिक़ हैं कि इ़ज़्ज़त पर हमलावर दुश्मन को पछाड़ना फर्ज़ है, चाहे वोह हमलावर खुद भी मुसलमान हो। इ़ज़्ज़त का दिफाअ़ बहरहाल किया जाएगा, ख़्वाह ऐसा करने में हमलावर क़त्ल ही क्यों न हो जाए। इसीलिए फुक़हा ने ये बात सराहत (साफ़–साफ़) से लिखी है कि ***अगर किसी मुसलमान औरत को अपनी इ़ज़्ज़त पामाल होने का ख़ौफ हो तो इसलिए जाइज़ नहीं कि वोह अपने आपको गिरफ्तारी के लिए दुश्मन के हवाले कर दे, (यानी उस पर मज़ाहिमत (प्रतिरोध) फर्ज़ है) चाहे उसे(नतीजतन) क़त्ल ही क्यों न कर दिया जाए।***

(ब) माल व जान पर हमलावर दुश्मन के खिलाफ दिफाअ़ !

जम्हूर उलमा और मालिकी व शाफई मज़हब की राजेह राए के मुताबिक माल व जान पर हमलावर दुश्मन को पछाड़ना फर्ज़ है, चाहे वोह हमलावर मुसलमान हो और चाहे मुक़ाबले के दौरान वोह मारा ही क्यों न जाए। सहीह हदीस में रसूलल्लाह (ﷺ)का ये फर्मान मन्कूल है :

''जो कोई अपने **माल की दिफाअ़** करते हुए मारा जाए **वोह शहीद** ह और जो कोई अपनी **जान की दिफाअ़** करते हुए मारा जाए **वोह शहीद है** और जो कोई अपने दीन **की दिफाअ** करते हुए मारा जाए **वोह शहीद** ह और जो कोई अपने **खानदान की दिफाअ़** करते हुए मारा जाए **वोह शहीद है।''(अहमद, अबूदाऊद, तिर्मिज़ी,नसाई सहीहुल–जामेअ–अस्सग़ीर लिल–अलबानी 6321)**

इमाम अबूबक्र जसास रह. ये हदीस ज़िक्र करने के बाद फर्माते हैं :

''अगर एक शख़्स किसी दूसरे शख़्स को नाहक़ क़त्ल करने के लिए उस पर तलवार उठाए तो मुसलमानों पर लाज़िम है कि वोह उसे कत्ल कर डालें। हमारे इल्म में नहीं कि इस मसले में कोई इख़्तिलाफ पाया जाता हो।''

(अलअहकामुल–कुर्आन, लिल जसास 2402/1)

ऐसी सूरते–हाल में अगर हमलावर (साइल) मारा जाए तो चाहे वोह मुसलमान ही क्यों न हो,वोह जहन्नम में जाएगा। लेकिन इसके बरअक्स, अगर अपना दिफ़ाअ करनेवाला (आदिल) मारा जाए तो वोह शहादत का रूतबा पाएगा। *अगर मुसलमान हमलावर के बारे में शरिअत का हुक्म ये है तो उन काफ़िरों के बारे में शरिअत का हुक्म क्या होगा जो मुसलमानों की सरज़मीन पर हमलावर हों और मुसलमानों का दीन, इज़्ज़त, जान और माल सब ही ख़तरे में पड़ जाएं ? क्या ऐसी हालत में भी मुसलमानों पर काफिर अदुव्वे–साइल और हमलावर काफिर मुल्क को पछाड़ना फ़र्ज़ नहीं होगा ?*

6. कुफ्फार मुसलमान क़ैदियों को ढ़ाल बना लें,तब भी लड़ा जाएगा।

अगर कुफ्फार मुसलमान क़ैदियों को अपनी फौज़ के सामने ढ़ाल के तौर पर इस्तेमाल करते हुए मुसलमानों के इलाक़ों पर क़ब्ज़े के लिए पेश–क़दमी करें तो भी उनसे जंग करना फर्ज़ है, ख़्वाह नतीजतन मुसलमान क़ैदी मारे ही क्यों न जाएं। (इस मसले को शरिअ़त की इस्तलाह में **''मसलाए–ततुर्रस''** कहा जाता है।)इमाम इब्ने–तैमिया रह. **''मजमूअ–अल्फतावा''** में फर्माते हैं :

''हत्ताकि अगर कुफ्फार के दर्मियान दुनिया के बेहतरीन, नेक सालेह लोग मौजूद हों, मगर उनके क़त्ल हुए बग़ैर कुफ्फार से क़िताल करना नामुमकिन हो तो उन्हें भी (कुफ़्फ़ार के साथ ही) क़त्ल कर दिया जाएगा। क्योंकि ***चारों इमाम इस बात पर मुत्तफिक़ हैं कि अगर कुफ्फार मुसलमान क़ैदियों को बतौरे–ढ़ाल इस्तेमाल करें और कुफ्फार पर हमला न करने की सूरत में बाक़ी मुसलमानों को नुक़सान पहुंचने का खतरा हो, तो उन मुसलमान क़ैदियों पर अस्लाह बरसाना जाइज़ होगा, अगरचे नीयत कुफ्फार को मारने की, की जाएगी।*** बाज़ उलमा के नज़दीक अगर बाक़ी मुसलमानों को कुफ्फार से खतरा न भी हो, तब भी (कुफ्फार को मारने की नीयत से) उन (ढ़ाल बनाए गए) मुसलमानों पर अस्लाह बरसाना जाइज़ है।'' **(मजमुआ अलफ़तावा 538/28)**

इसी किताब के सफ़ा 45 पर आप रहमतुल्लाह अलैह फ़रमाते हैं ''रसूलुल्लाह (ﷺ) की सुन्नत और इज्मा–ए–उम्मत, दोनों इस बात पर मुतफ़िक़ हैं कि अगर मुस्लिम हमलावर (साइल) को क़त्ल किये बग़ैर उसके शर से निजात पाने की कोई सूरत न हो तो उसे क़त्ल कर दिया जाए, चाहे जो माल वोह छीनना चाह रहा हो वोह महज़ दीनार (सोने) का एक क़िरात ही क्यों न हो। चुनांचे सहीह हदीस में है कि ''*जो शख्स अपने माल का दिफ़ाअ (रक्षा) करते हुए मारा जाए वोह शहीद है।*'' शरीअ़त ने ढ़ाल बनाए गए मुसलमान क़ैदियों को क़त्ल करने की इजाज़त इसीलिये दी है क्योंकि बाक़ी मुसलमानों को फ़ित्ने और शिर्क से बचाना और उनके दीन, इज़्ज़त और माल की हिफ़ाज़त करना उन चन्द लोगों की ज़िंदगियां बचाने से ज़्यादा ज़रूरी व अहम है।

7. क्या बाग़ी काफिर मुमालिक के ख़िलाफ़ क़िताल, मुस्लिम बाग़ियों के ख़िलाफ़ जंग से औला (बढ़कर) नहीं?

अल्लाह अज़्ज़वजल का फर्मान है और

وَإِن طَائِفَتَانِ مِنَ الْمُؤْمِنِينَ اقْتَتَلُوا فَأَصْلِحُوا بَيْنَهُمَا فَإِن بَغَتْ إِحْدَاهُمَا عَلَى الْأُخْرَى فَقَاتِلُوا الَّتِي تَبْغِي حَتَّى تَفِيءَ إِلَى أَمْرِ اللَّهِ فَإِن فَاءَتْ فَأَصْلِحُوا بَيْنَهُمَا بِالْعَدْلِ وَأَقْسِطُوا إِنَّ اللَّهَ يُحِبُّ الْمُقْسِطِينَ (9)

अगर मुसलमानों में से दो गिरोह आपस में लड़ जाएं तो उनके दरमियान सुलह कराओ। फिर उनमें से अगर एक गिरोह दूसरे पर ज़्यादती करे तो ज़्यादती करने वाले से लड़ो, यहां तक कि वो अल्लाह के हुक्म की तरफ़ पलट आएं। फिर अगर वोह पलट आएं तो उनके दरमियान अदल के साथ सुलह करवा दो और इन्साफ़ करो, बेशक अल्लाह इन्साफ़ करने वालों को पसन्द फरमाता है।''

(अलहुजरात–9)

पस, अल्लाह तआला ने मुसलमानों की वहदत और उनके दीन की इ़ज़्ज़त और माल के तहफ़्फ़ुज़ के लिये मुसलमान बाग़ी गिरोह के खिलाफ़ क़िताल फ़र्ज़ क़रार दिया है। जब मुसलमान बाग़ियों के हवाले से अल्लाह रब्बुल इ़ज़्ज़त का हुक्म यह है तो आप खुद ही सोचिये कि बाग़ी काफ़िर मुल्कों के बारे में हुक्म क्या होगा? यक़ीनन उनके ख़िलाफ़ क़िताल तो उससे कहीं बढ़कर फ़र्ज़ होगा?

8. क्या ग़ासिब मुमालिक के खिलाफ़ क़िताल, मुहारबीन (फ़सादी लोगों) के खिलाफ़ क़िताल से कहीं बढ़कर फ़र्ज़ नहीं?

अल्लाह अज़्ज़ वजल का फरमान है,

إِنَّمَا جَزَاءُ الَّذِينَ يُحَارِبُونَ اللَّهَ وَرَسُولَهُ وَيَسْعَوْنَ فِي الْأَرْضِ فَسَادًا أَن يُقَتَّلُوا أَوْ يُصَلَّبُوا أَوْ تُقَطَّعَ أَيْدِيهِمْ وَأَرْجُلُهُم مِّنْ خِلَافٍ أَوْ يُنفَوْا مِنَ الْأَرْضِ ذَلِكَ لَهُمْ خِزْيٌ فِي الدُّنْيَا وَلَهُمْ فِي الْآخِرَةِ عَذَابٌ عَظِيمٌ (33)

''जो लोग अल्लाह और उसके रसूल के ख़िलाफ़ लड़ते हैं और ज़मीन में फसाद फैलाते फिरते हैं उनकी यही सज़ा है कि क़त्ल किये जाएं या सूली दिये जाएं

या उनके हाथ और पांव मुखालिफ़ सिम्त से काट दिये जाएं या उन्हें जिलावतन कर दिया जाए। ये तो हुई उनकी दुनियावी ज़िल्लतो–ख़्वारी और आख़िरत में उनके लिये बड़ा भारी अज़ाब है।'(अलमाइदा–33)

इस आयते–मुबारका में उन मुसलमान मुहारबीन की सज़ा बयान की गई है जो मुसलमान अवाम को ख़ौफ़ज़दा करें, ज़मीन में फ़साद फैलाएं,लोगों के माल छीनें और इज़्ज़तें पामाल करें।

इमाम बुख़ारी रह. और इमाम मुस्लिम रह. दोनों रिवायत करते हैं कि **रसूलुल्लाह (ﷺ) ने "क़बील–ए–उरैना" के बद्दुओं पर यह सज़ा अमलन नाज़िल की।** *(उनज़ुर :अलफ़तदुर्रब्बानी तरती मुसनद अहमद, शयबानी अल अहमद अब्दुर्रहमान अलबना 128/18)*

हज़रत अनस रजि. रिवायत करते हैं कि *"रसूले–अकरम (ﷺ) ने क़बील–ए–उकल और उरैना के कुछ लोगों पर हद जारी फर्माई, जिन्होंने मुसलमान चरवाहे को क़त्ल किया था और ऊंट हंका कर ले गए थे।"*

"पस, आप (ﷺ) ने उनके हाथ–पांव कटवा दिये और सलाई फ़िरवाकर उनकी आंखें फोड़ डालीं, फिर उन्हें मैदान में फेंक दिया गया, वो पानी मांगते थे मगर उन्हें पानी नहीं दिया जाता था (यहां तक कि वोह मर गए) अबु–क़लाबा ने(इस सज़ा की वजह बताते हुए) फरमाया, ये वोह लोग थे जिन्होंने चोरी की थी, क़त्ल का इर्तिकाब किया था, ईमान लाने के बाद कुफ्र किया था और अल्लाह और उसके रसूल के खिलाफ़ लड़ते थे।"(सही बुख़ारी, किताबुल–मुहारबीन)

अब आप खुद ही बताइये कि अगर उन मुसलमान मुहारबीन को यह सज़ा दी गई तो उन *क़ाफिर मुमालिक की सज़ा* क्या होगी जो मुसलमानों का दीन, मालो–इज़्ज़त, सब पामाल कर रहे हों ? यक़ीनन वोह उससे कहीं ज़्यादा मुस्तहिक़ हैं कि उनके खिलाफ़ जंग की जाए और बिलाशुब्हा मुसलमानों पर भी कहीं बड़ा फ़र्ज़ है कि वोह ऐसे मुमालिक के खिलाफ़ जिहाद करें।

ये थे वोह चन्द दलाइल जिनसे साबित होता है कि अगर कुफ़्फ़ार मुसलमानों की सरज़मीन पर हमलावर हों तो नफ़ीरे–आम (यानि तमाम लोगों का जिहाद के लिये निकलना) फ़र्ज़ हो जाता है। हमलावर कुफ़्फ़ार के बिलमुक़ाबिल दिफ़ाई जिहाद करना महज़ फ़र्ज़ ही नहीं, ईमान लाने के बाद अहमतरीन फ़रीज़ा है। जैसाकि इमाम इब्ने–तैमिया रह. फरमाते हैं, *"ईमान लाने के बाद सबसे अहम फ़रीज़ा दीनो–दुनिया को बर्बाद करने वाले हमलावर दुश्मन (अदुव्वे–साइल) को दफ़ाअ (मार भगाना) करना है।"* **(फ़तावा–अलकुबरा–608/4)**

मौजूदा हालात में फ़िलिस्तीन और अफ़ग़ानिस्तान में जारी क़िताल का शरई हुक्म

अब तक की गुफ्तगू से ये बात वाज़ेह हो चुकी है कि कुफ़्फ़ार अगर ***मुसलमानों की गज़ भर ज़मीन*** पर भी चढ़ाई कर दे तो उस इलाक़े में बसने वालों और उनके करीब रहने वालों पर जिहाद फर्ज़े–ऐन हो जाता है। फिर अगर ये लोग दुश्मन को बाहर निकालने के लिए काफी हों या कोताही करें या सुस्ती दिखाएं तो जिहाद की फर्ज़ियते–ऐन का दायरा उनके पड़ौस में बसने वालों तक भी फैल जाता है। फिर फर्ज़ियत का ये दायरा बतदरीज़ (क्रमवार) फैलता जाता है, यहाँ तक कि (ज़रूरत पड़ने पर) शरक़न–ग़रबन (पूरब व पश्चिम) पूरी ज़मीन को अपनी लपेट में ले लेता है और ऐसी सूरत में (यानी जब जिहाद फर्ज़े–ऐन हो जाए) बीवी, शौहर की, औलाद, वालदैन की और मक़रूज़,क़र्ज़ख़्वाह की इजाज़त का पाबन्द नहीं रहता। (याद रहे कि औरत के लिए जिहाद में जाना तभी जाइज़ होगा जब उसके साथ कोई महरम मौजूद हो(मुतर्जिम) चुनांचे:

1. कोई भी ऐसा क़तआ–ए–ज़मीन जो कभी इस्लामी ज़मीन का हिस्सा रहा हो, जब तक कुफ़्फ़ार के क़ब्ज़े में है(उसे दुश्मन से वापस लेने तक) सब मुसलमानों की गर्दनों पर उसका गुनाह बाक़ी रहेगा।

2. जो शख़्स जितनी ज़्यादा इस्तिताअत, इमकानियात (संभावनाएं) और ताक़त का हामिल होगा, उसके कन्धों पर उस गुनाह का बौझ भी उतना ही ज़्यादा होगा। लिहाज़ा मुआशरे में नुमाया हैसियत के हामिल उलमा,(मुमताज़ तरीन व अअला)क़ाईदीन और दाईयों पर गुनाह का ये बोझ आम लोगों की निस्बत कहीं ज़्यादा होगा।

3.मुसलमानों की जिन सरज़मीनों में आज जिहाद जारी है,मसलन अफ़ग़ानिस्तान, फ़िलिस्तीन, फिलिपाइन, कश्मीर, लिबनान, चाढ़, इरीट्रिया (और अब ईराक़, शीशान (चेचेन्या) वग़ैरह भी), उम्मते–मुस्लिमा की मौजूदा नस्ल उन इलाक़ों के दिफाअ के लिए न निकलने पर ज़्यादा गुनाहग़ार होगी, बनिस्बत उन इलाक़ों के जो साबिक़ा अदवार (पुराने इतिहास व दौर)में मुसलमानों से छीने गए। (मसलन, साइबेरिया, बल्क़ान के मुमालिक, स्पेन, यूनान, हंगरी, आस्ट्रिया, पुर्तगाल, क़बरस, निस्फ फ्रांस, जुनूबी यूरोप के दीग़र इलाक़े, रूस के ज़ेरेकब्ज़ा मुसलमानों की ज़मीनें, हिन्दुस्तान, थाईलैंड और फिलिपाइन के मक़्बूज़ा मुस्लिम जज़ाइर (द्वीप) अरकान, मश्रिकी तुर्किस्तान यानी काशग़र, सिक्यांग,(चीन का वो हिस्सा जो रूस के मुस्लिम इलाक़ों,पाकिस्तान से लगते कश्मीर के बॉर्डर के बहुत क़रीब है, वग़ैरह)

हमारी राए में इस वक़्त हमारी तमामतर कोशिशों का मर्कज़ **जिहादे–अफ़ग़ानिस्तान और जिहादे–फ़िलिस्तीन को होना चाहिए,** क्योंकि आज के मर्कजी मअरके यहीं हैं, यहाँ क़ाबिज़ मक्कार दुश्मन तौसीअपसन्दाना (साम्राज्यवादी) अज़ाइम के हामिल हैं, इन दोनों महाज़ों पर फतह बहुत से दीग़र महाज़ों पर ***फ़तह की कुंजी*** है और उन दोनों का दिफाअ दरहक़ीक़त सारी उम्मत का दिफाअ है *(वाज़ेह रहे कि जिस वक़्त यह फतवा दिया गया था उस वक़्त तक अमरीका,बर्तानिया और दीग़र सलीबी मुमालिक ने जज़िरा–ए– अरब और ईराक़ वग़ैराह पर चढ़ाई नही की थी, न ही दीग़र तहरीकाते–जिहाद ने यूं ज़ोर पकड़ा था। (मुतर्जिम))*

अफ़ग़ानिस्तान ही से आग़ाज़ क्यों ?

दयारे–अरब में बसने वाले मुसलमानों में से जिसके लिए भी फ़िलिस्तीन जाकर जिहाद करना मुमकिन है,उसे पहले फ़िलिस्तीन ही जाना चाहिए और जो वहाँ न जा सकता हो उसे अफ़ग़ानिस्तान का रूख करना चाहिए।

जहाँ तक **बाक़ी मुसलमानों का तअल्लुक है तो मेरी राए में उन्हें अफ़ग़ानिस्तान ही से जिहाद का आग़ाज करना चाहिए।** मैं उन्हें फ़िलिस्तीन से पहले अफ़ग़ानिस्तान आने की दावत इसलिए नहीं दे रहा हूं कि अफ़ग़ानिस्तान, फ़िलिस्तीन से ज़्यादा अहम है,बल्कि हक़ीक़त तो ये है कि इस्लाम का अव्वलीन क़ज़्या (पहला फ़ैसला),मअरका–ए– फ़िलिस्तीन ही है। **फिलिस्तीन, अम्बिया अलैहिस्सलाम की सरज़मीन है, आलमे–इस्लाम का दिल है,** लेकिन बाज़ वजूहात की बुनियाद पर इन हालात में अफ़ग़ानिस्तान ही से जिहाद का आग़ाज करना बेहतर होगा।(उनमें से चन्द वजुहात यहां लिखी जाती हैं)

1. अफ़ग़ानिस्तान में इस वक़्त मैदान गरम हो चुका है।

अफ़ग़ानिस्तान में इस वक़्त जिहाद जारी है, मैदान गरम हो चुका है, और दामने–हिन्दूकुश में जारी ये मअरका इतनी शिद्दत इख्तियार कर चुका है कि गुज़िश्ता कई सदियों की इस्लामी तारीख में इसकी मिसाल नही मिलती।

(नाटो अफ़वाज़ यहां पर बुरी तरह से घिर चुकी हैं,और यहां से निकलने के लिये आए दिन उनकी तरफ़ से नई–नई तारीखें व सुलह के अय्यारी व मक्कारी भरे पैग़ामात भिजवाए जा रहे हैं,रोजाना दर्जनों हमलों की मार व अपने कागजी शेरों की मौतों ने उन्ह मुजाहिदीन के आगे घुटने टेकने पर मज़बूर कर दिया है। याद रहे कि यहां पर जो एक दफ़ा और अल्लाह की मेहरबानी से रूसी अफ़वाज़ की पस्पाई ही की तरह अमेरिका की जिस दिन हार पूरी तरह से मुकम्मल हो जाएगी,इशांअल्लाह दुनिया में शरिअते–मुहम्मदिया के निफ़ाज़ की एक बहुत बड़ी रूकावट दूर हो जाएगी।(वल्लाहू आलम)(मुतर्जिम))

2.इस जिहाद का हदफ अल्लाह के कलमे की सरबुलन्दी के सिवा कुछ नहीं।

जिहादे–अफ़ग़ानिस्तान में खालिस इस्लामी पर्चम बुलन्द किया गया है जिस पर मोटे हुरूफ में *"लाइलाहाइल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह"* लिखा हुआ है। इस जिहाद का हदफ अल्लाह के कलमे की सरबुलन्दी के सिवा कुछ नहीं। मुजाहिदीने–अफ़ग़ानिस्तान के इस्लामी इत्तिहाद ने अपन दस्तूर (उसूल व मक़ासिद) की दूसरी शिक़ (लाईन) में लिखा है :

"इस इत्तिहाद का हदफ अफ़ग़ानिस्तान में हुकूमते –इस्लामिया का क़याम है।"

इसी दस्तूर की तीसरी शिक़ ये है :

"हमारा ये हदफ अल्लाह तआला के इस फर्मान से माखूज है :"

"इनिल हुकमू इल्लालिल्लाह."

"फरमां रवाई का हक़ किसी को हासिल नही, सिवाए अल्लाह के।"

चुनांचे हाकमियते–मुतलक़ अल्लाह रब्बुलआलमीन ही के लिए मख़सूस है।"

3. अफ़ग़ानिस्तान में मअरके की क़यादत बुनियादी तौर पर इस्लामपसन्दों ने संभाल रखी है।

अफ़ग़ानिस्तान में मअरके की क़यादत बुनियादी तौर पर इस्लामियों ने संभाल रखी है और जो लोग आज जिहाद को लेकर चल रहे हैं वोह अफ़ग़ानिस्तान की इस्लामी तहरीकात ही के फरज़ंद हैं, उलमा, तलबा व हुफ्फ़ाजे–कुर्आन हैं।

दूसरी तरफ फिलिस्तीन में मामला इससे मुख़्तलिफ है। वहां हर क़िस्म के लोग क़यादत के मन्सब पर फाइज़ हैं। जहाँ उनमें सच्चे व मुख़्लिस मोमिनीन हैं, वहीं आम से मुसलमान और इश्तराकी भी शामिल हैं, और ये सब एक सेक्यूलर हुकूमत के पर्चम तले जमा हैं।

4. जिहादे–अफ़ग़ानिस्तान तागूतों के ताबेअ नहीं।

जिहादे–अफ़ग़ानिस्तान अभी तक मुजाहिदीन के अपने हाथों में है और वोह हमेशा मुश्रिक मुमालिक की जानिब से इम्दाद की पेशकशों को मुस्तरद (रद्द) करते रहे हैं। *(जिहादे–अफ़ग़ानिस्तान को रूस व अमरीका की जंग कहने वाले दरअसल मग़िरबी ज़राए अबलाग़ (प्रचार–माध्यमों) की ज़बान बोलते हैं। ये लोग मुजाहिदीन को अमरीका के आला–ए– कार कहकर औलिया अल्लाह को मतउन (बदनाम) करते हैं। हक़ीक़त में मुजाहिदीन ने मुश्रिक मुमालिक से कभी इम्दाद वसूल नहीं की। ताहम उन काफ़िर अक़्वाम ने जिहादे–अफ़ग़ानिस्तान के शुरू होने के 5-6 साल बाद जब उसकी कामयाबी को यक़ीनी जाना तो बाज़ मुस्लिम मुमालिक के हाथ अपना अस्लाह (हथियार) फरोख़्त*

किया जो बाज़ अफगान तंज़ीमों को मिलता रहा। (मुतर्जिम))

इसके बरअक्स,फ़िलिस्तीन की तहरीक(पी.एल.ओ.) ने तमामतर इंहिसार (निर्भरता)सोवियत इत्तिहाद पर किया, मगर उसने मुश्किलतरीन हालात में फ़िलिस्तीन का साथ छोड़ दिया ताकि वोह तन्हा ही आलमी साजिश का मुक़ाबला करे। नतीजतन,फ़िलिस्तीन दुनिया के बड़े मुमालिक के हाथों में महज़ एक खिलौना बनकर रह गया। ***उसकी ज़मीन, उसके लोग और उसकी इज़्ज़त***, सब कुछ दांव पर लग गयी। इसी पर बस नहीं हुआ बल्कि अरब रियासतों में घुसकर भी उनका तआक़ुब (घेराव) किया गया, यहाँ तक कि उनकी असकरी (फ़ौजी) कुव्वत और उनका कोई मुनज़्ज़म वजूद बाक़ी न बचा।

5.अगर मुख़्तलिफ तरह के दुश्मनों से साबिक़ा हो तो इमाम को ख़तरनाक–तरीन दुश्मन से क़िताल का आग़ाज करना चाहिए।

अफ़ग़ानिस्तान की सरहदें मुजाहिदीन के लिए खुली हुई हैं। तक़रीबन तीन हज़ार किलोमीटर तवील सरहद ऐसी है कि उससे बिला रोक–टोक गुज़रा जा सकता है। सरहद के ईर्द–गिर्द के इलाक़ों में भी क़बाइल आबाद हैं जो किसी सियासी इंतज़ामिया के तहत नहीं आते और मुजाहिदीन के लिए एक मज़बूत हिफाज़ती फसील(दीवार)का काम देते हैं। *(फाटा, वज़ीरिस्तान, आज के हालात में अमेरिका का पाकिस्तान पर सबसे ज़्यादा दबाव इसी सरहद को लेकर है, वो चाहता है कि पाकिस्तान के कश्मीर से लगती अपनी सरहदों से अपनी फौजों को हटाकर अफ़गान बॉर्डर पर लगा दे, ताकि मुजाहिदीन की आज़ादाना आमदो–रफ़्त पर मुकम्मल तौर पर रोक लग सके, मुशर्रफ़ व जरदारी जैसे शिकमपरस्तों ने अपने आक़ा अमेरिका की इस मांग को काफ़ी हद तक पूरा भी कर दिया है। (मुतर्जिम)*)
फ़िलिस्तीन में सूरते–हाल इससे बिल्कुल मुख़्तलिफ है। वहां तो सरहदें हर सिम्त से बन्द हैं, हाथ बंधे हुए हैं और यहूदियों की इंतज़ामिया कड़ी निगाहें रखे हुए है कि कहीं कोई मुसलमान यहूदियों से क़िताल के लिए अंदर न घुस आए।
इमाम शाफई रह. "**किताबुल–उम्म**" में लिखते हैं :

"अगर मुख़्तलिफ तरह के दुश्मनों से साबिक़ा हो, जिनमें से बाज़,बाज़ों से ज़्यादा मूज़ी(बदमाश) या खतरनाक हों, तो इमाम को चाहिए कि मुज़ी–तरीन या खतरनाक–तरीन दुश्मन से क़िताल का आग़ाज करे।"

अगर ऐसा खतरनाक दुश्मन बाक़ी दुश्मनों की निस्बत ज़्यादा दूर रहता हो,तब भी उसके खिलाफ़ क़िताल का आग़ाज करने में इन्शाअल्लाह कोई हर्ज नहीं,यहाँ तक कि दूर के दुश्मन,जिसके ख़िलाफ़ जंग का आग़ाज़ किया गया था,उसका खतरा खत्म हो जाए

ये इक़दाम (यानी क़रीब के दुश्मन को छोड़कर दूर के दुश्मन से लड़ना) ***"ज़रूरत"*** को मद्देनज़र रखते हुए ही उठाया जाएगा, क्योंकि "**हालते–ज़रूरत**" ही में ऐसा काम जाइज़ हो सकता है जो आम हालात में जाइज़ नहीं होते। रसूलुल्लाह (ﷺ) के दौर में भी ऐसा हो चुका है। जब आप(ﷺ)को ये खबर मिली कि "**हारिस बिन अबी जरार**"

मुसलमानों पर हमले के लिए लश्कर जमा कर रहा है तो आप (ﷺ) ने उस पर हमला कर दिया हालांकि रसूलुल्लाह (ﷺ) के क़रीब दूसरे दुश्मन भी मौजूद थे, जो उसकी निस्बत नज़दीक थे। इसी तरह जब आप (ﷺ) को मालूम हुआ कि **''ख़ालिद बिन अबी सुफ़ियान बिन शोह''** मुसलमानों के खिलाफ़ जंग की तैयारी कर रहा है तो आप (ﷺ) ने हज़रत **इब्नेअनीस रज़ि.** को रवाना फर्माया और उन्होंने जाकर उसे क़त्ल कर दिया। (चुनांचे उस मौक़े पर भी आप (ﷺ) ने दूर के दुश्मन पर हमले का हुक्म दिया) हालांकि उससे क़रीबतर दीग़र दुश्मन भी मौजूद थे।'' **(किताबुल–उम्म, 4/177)**

(आख़िर में ज़िक्र किए गए वाकिये की तफ़सील कुछ इस तरह है :)

माहे–मुहर्रम 4 हिजरी की 5 तारीख़ को रसूलुल्लाह (ﷺ) को ये ख़बर मिली कि **ख़ालिद बिन सुफ़ियान हज़ली** मुसलमानों पर हमला करने के लिए फ़ौज जमा कर रहा है। रसूलुल्लाह (ﷺ) ने उसके खिलाफ कार्यवाई के लिए **हज़रत अब्दुल्लाह बिन अनीस रज़ि.**को रवाना फर्माया। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अनीस रज़ि. मदीने स **अठारह** रोज़ बाहर रह कर **तैईस (23) मुहर्रम** को वापस तशरीफ लाए। वोह खालिद को क़त्ल करके उसका सर भी अपने साथ लाए थे। जब खिदमते–नबवी (ﷺ) में हाज़िर होकर उन्होंने ये सर आप(ﷺ)के सामने पेश किया तो आप(ﷺ) ने उन्हें एक असा (लाठी) मरहत फर्माया और फर्माया कि : ***ये मेरे और तुम्हारे दर्मियान क़यामत के दिन निशानी रहेगा।*** जब उनकी वफ़ात का वक़्त आया तो उन्होंने वसीयत की कि ये असा (लाठी) भी उनके साथ उनके कफ़न में लपेट दिया जाए। *(ज़ादुलमआद, 2/108) (मुतर्जिम)*

6. ये पहाड़ और उसमें बसने वाले लोग ...

अफ़ग़ानिस्तान में बसने वाले अपनी शुजाअत,जफाकशी और आला–हिम्मती में अपनी मिसाल आप हैं। यूं महसूस होता है गोया अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त ने ये पहाड़ और उनमें बसने वाले लोग ख़ास तौर पर जिहाद ही के लिए तैयार फर्माए हैं। *(जिन मंदर्जा बाला अस्बाब की बिना पर इमाम अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम रह. ने अफ़ग़ानिस्तान से जिहाद के आग़ाज को तर्जीह दी थी, ये लाएहा–अमल बहुत दूररस फ़िक्र और आलमे–इस्लाम के मुख़्तलिफ ख़ित्तों में होनेवाले पै–दर–पै जिहादी तजुर्बात व तहरीकात का निचोड़ था। वक़्त ने साबित किया कि ये जिहाद इस्लाम के दिफ़ाअ और ग़ल्बे की मुहिम की असास(बुनियाद व पहचान) बन गया। सरज़मीने–ख़ुरासान में इसी जिहाद के तसलसुल तसलील (बराबर) के नतीजे में इस्लामी इमारत क़ायम हुई, शरीयत का ग़ल्बा हुआ। मग़्रिबी तहज़ीब के फसाद से पाक तालीमी व मुआशरती ज़िंदगी की एक झलक अहले–इस्लाम को देखने को मिली, इस्लाम के निज़ामे–अद्ल का क़याम मुमकिन हुआ।*

हक़ीक़त में अफ़ग़ानिस्तान में आलमी सलीबी कुफ्र के ख़िलाफ जारी मौजूदा जिहाद, आज भी अपनी तरफ मुतवज्जह करने के ये सभी अस्बाब अपने अंदर मौजूद रखता है। (वमा तौफिक़ी इल्ला बिल्लाह.) (मुतर्जिम)

❖ (बाब–चहारूम) (अध्याय–चार) ❖

फ़र्ज़े–ऐ़न और फर्ज़े–किफ़ाया

फर्ज़े–ऐ़न से मुराद है वोह फर्ज़ जिसे खुद (बनफ़्से–नफ़ीस) अदा करना हर मुसलमान पर लाज़िम हो, मसलन नमाज़ और रोज़ा। फर्ज़े–किफ़ाया का मतलब है वोह फर्ज़ जो अगर बाज़ लोग अदा कर दें तो बाक़ियों पर उसकी अदायगी लाज़िम नहीं रहती। उसे फर्ज़ ***"किफाया"*** इसीलिए कहा जाता है कि अगर उसकी अदायगी के लिए लोग ***"काफी"*** न हों तो तमाम लोग ही गुनहगार होते हैं, और अगर उसकी अदायगी के लिए दरकार तादाद पूरी हो जाए (यानी "किफ़ायत" हो जाए) और फर्ज़ अदा कर दिया जाए, तो बाक़ी सब लोगों पर से फर्ज़ियत साक़ित हो जाती है।

इब्तदा से फर्ज़े–किफ़ाया भी फर्ज़े–ऐ़न ही की तरह सब पर फर्ज़ होता है। फर्क़ ये है कि फर्ज़े–किफ़ाया को अगर बाज़ लोग अदा कर दें तो बाक़ियों पर से फर्ज़ियत साक़ित हो जाती है,जबकि फर्ज़े–ऐ़न हर एक को खुद ही अदा करना होता है, किसी दूसरे के अदा करने से बाक़ियों की जिम्मेदारी खत्म नहीं होती। **(अलमुग़नी, इब्ने कुदामा,345/8)**

इसलिए इमाम फ़खरूद्दीन राज़ी रह. ने फ़र्ज़े–किफ़ाया की यह तारीफ़ बयान की है : **"वोह फर्ज़ जिसका पूरा किया जाना ही असल मक़सूद हो, चाहे उसे कोई भी अदा कर दे।"**

(अलमहसूल लिल राज़ी, तहक़ीक़ अलदुक़्तूर ताहा जाबिर किस्म–2 सफ़ा 31)

इमाम शाफई रह. फर्माते हैं :

"फर्ज़े–किफाया एक ऐसा फर्ज़ है जिसका हुक्म सबको दिया जाता है, मगर उसकी अदायगी चन्द लोगों ही से करना मक़सूद होती है।"

(उसूल अल फ़िक्हुल अबी ज़ुहरा)

जम्हूर उसूलीन, जिनमें इब्नुलहाजिब रह., आमदी रह. और इब्ने–अब्दुश्शकूर रह. भी शामिल हैं, फर्माते हैं कि फर्ज़े–किफ़ाया (इब्तदा में) सब पर फर्ज़ होता है, मगर बाज़ लोगों की जानिब से अदायगी बाक़ियों पर से उसकी फर्ज़ियत साक़ित कर देती है।

महज़ हल्की फुल्की मज़ाहिमत (प्रतिरोध) से फर्ज़ियत की अदायगी नहीं हो जाती !

बाज़ लोग जिहाद के शरई हुक्म के बारे में झगड़ते हैं और कहते हैं कि जिहाद आज फर्ज़े–ऐ़न नहीं,फर्ज़े–किफाया है। अगर हम एक लम्हे के लिए उनकी ये बात तसलीम कर लें तब भी उनकी गुलू खुलासी (गलों का छूटना) नहीं होती। अगर जिहाद को आज फर्ज़े–किफ़ाया मान लिया जाए तब भी अफ़ग़ानिस्तान में जारी जिहाद पूरी दुनिया के तमाम मुसलमानों पर उस वक़्त तक फर्ज़ रहेगा जब तक कि इस फरीज़े की अदायगी अपनी

तकमील को नहीं पहुंच जाती। यानी जब तक दुश्मन को अफ़ग़ानिस्तान (और इसी तरह ईराक़, शीशान,और तमाम दीगर मुस्लिम मक़बूज़ात) से निकाल बाहर नहीं कर दिया जाता,पूरी उम्मत तर्के–जिहाद का गुनाह समेटी रहेगी। इसलिए कि कुफ़्फ़ार अगर मुसलमानों पर हमलावर हो जाएं तो फ़र्ज़ ये चीज़ नहीं होती कि उनके खिलाफ हल्की फुल्की मज़ाहिमत जारी रखी जाए, बल्कि उन्हें मुसलमानों की सरज़मीन से बाहर निकालना असल फरीज़ा होता है, (और जब तक ये हदफ हासिल न हो जाए जिहाद हर एक पर फ़र्ज़ रहता है।) एक और बात भी आजकल अक्सर **सुनने** को मिलती है :

''जिहादे–अफ़ग़ानिस्तान को पैसों की ज़रूरत है, लोगों की नहीं।''

इक़ीक़त ये है कि इस बात में सिरे से कोई वज़न नहीं। अगर जिहादे–अफ़ग़ानिस्तान को अफराद की ज़रूरत ना होती और मुजाहिदीन की तादाद काफी होती तो क्या इतने साल गुज़र जाने के बाद भी दुश्मन अफ़ग़ानिस्तान में बैठा होता? क्या पचास (50) लाख मुसलमान अफ़ग़ानिस्तान से हिजरत करने पर मजबूर होते? क्या सत्तर (70) लाख मक़ामी आबादी को अपने घरों से भागकर अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर ही पहाड़ों और सहराओं में पनाह लेने की ज़रूरत पड़ती ? उस्ताज़ सय्याफ (अल्लाह उन्हें हिदायत दे) ने इसी बारे में कहा था : ***''आज चौदह मुमालिक मिलकर हमारे खिलाफ जंग लड़ रहे हैं, जिनमें सोवियत इत्तिहाद,मीसाक़े–वार्सा व नाटो के हलीफ(वार्सा व नाटो सन्धि के पैरोकार)और बैनुल्क़वामी इश्तराकियत(आलमी इस्लाम–दुश्मन ताक़तें)सरे–फेहरिस्त हैं,जबकि पूरी इस्लामी दुनिया अभी तक इसी बहस में उलझी हुई है कि जिहाद फर्ज़े–ऐन है या फर्ज़े–किफाया ? अब तक अफ़ग़ानिस्तान में दस से पन्द्रह लाख मुसलमान शहीद हो चुके हैं ,मगर ये लोग ग़ालिबन इस बात के मुन्तज़िर हैं कि अफ़ग़ानिस्तान में बसने वाला आख़िरी मुसलमान भी शहीद हो जाए, शायद तब उन्हें यक़ीन आ जाएगा कि जिहाद वाक़ई फर्ज़े–ऐन हो गया है।''***

अहले–अफ़ग़ानिस्तान तो यहाँ तक कहते हैं कि **''हमारे दर्मियान आलमे–इस्लाम के एक मेहमान मुजाहिद का मौजूद होना हमें लाखों डॉलरों से ज़्यादा महबूब है।''**

उस्ताज़ सय्याफ (अल्लाह उन्हें हिदायत दे) ने ***उलमा और दाई हज़रात के नाम एक पैग़ाम*** दिया है, जा **'मजल्ला जिहाद'** के उन्नीसवें शुमारे में छपा है। इस पैग़ाम का मतन (आगे) दिया जा रहा है :

بسم الله الرحمن الرحيم

अस्सलामुअलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकतुहू, अलहम्दुलिल्लाह, वस्सलातुवस्सलाम अला रसूलिल्लाहि व अला आलिही व अस्हाबिही व मनीअहतदी बहदीही, अम्मा बअद :

आप लोग इस बात से बखूबी वाक़िफ हैं कि अफ़ग़ानिस्तान में जिहाद शुरू हुए काफी अर्सा हो चुका है और अल्हम्दुलिल्लाह, ये जिहाद अभी तक जारी है। आला–ए–कलिमतुल्लाह और इस्लामी हुकूमत का क़याम ही जिहादे–अफ़ग़ानिस्तान का असल हदफ है, मगर इस हदफ के हुसूल के लिए ऐसे–ऐसे मुजाहिदीन दरकार हैं जो दीने–इस्लाम का गहरा फहम रखते हों और जिहाद के असली इस्लामी तशख़्खुस (ख़ास पहचान) की हिफ़ाज़त कर सकते हों। आज ऐसे उलमा और दाईयों की सख़्त ज़रूरत है जो मुजाहिदीन की दीनी तर्बियत का काम मुस्तकिल तौर पर संभालें। मैं यहाँ आपको ये भी बताता चलूँ कि अफ़ग़ानिस्तान में मौजूद उलमा–ए–किराम और मुरब्बियों की एक बहुत बड़ी तादाद मैदाने–जिहाद में शहीद हो चुकी है। लिहाज़ा, हमें ऐसे अफ़राद की कमी बहुत शिद्दत से महसूस होती है जो मुजाहिदीन के मदारिस, तर्बियती मअसकरात (फ़ौजी तालीम) और मुहाज़ों पर दर्स व तदरीस और दीनी व फिकरी तर्बियत का काम संभालें, ताकि हम अपने मतलूबा अहदाफ हासिल कर सकें। बिलाशुब्हा आज हमें किसी भी मैदान के माहिरीन और मुतख़स्ससीन (बेहद ख़ास) से बढ़कर उलमा और दाई हज़रात की ज़रूरत है।

अल्लाह हमें और आपको इस्लाम व अहले–इस्लाम की खिदमत करने की तौफीक़ अता फर्माए। (आमीन)

आपका भाई,

अब्दुर्रब रसूल सय्याफ

(पक्तिया, जाजी, 3 शव्वाल 1405 हिजरी)

(बाब–पन्जुम) (अध्याय–पांच)

जिहाद के लिए इजाज़त लेना कब ज़रूरी है ?

वालदैन, शौहर और क़र्ज़–ख़्वाह से इजाज़त का मसला

इजाज़त मांगने के शरई हुक्म का दारोमदार दुश्मन की सूरते–हाल पर है, लिहाज़ा :

1. अगर दुश्मन अपने इलाक़े तक ही महदूद हो, सरहदों पर फौज़ भी जमा न कर रहा हो, न ही मुस्लिम मुमालिक पर किसी भी तौर पर असर अंदाज हो रहा हो और मुसलमानों की सरहदों पर दिफाअ के लिए काफी तादाद में सिपाही भी मौजूद हों तो ऐसी हालत में जिहाद फर्ज़े–किफ़ाया होता है। जब जिहाद फर्ज़े–किफ़ाया हो तो इजाज़त लेना लाज़िम होता है, क्योंकि वालदैन और शौहर की इताअत फर्ज़े–ऐन है, और **'फर्ज़े–ऐन को किफाया पर तर्जीह हासिल होती है।'**

2. अगर दुश्मन मुसलमानों की सरहदों पर हमला कर दे या किसी इस्लामी सरज़मीन में घुस आए, तो जैसाकि हम पहले बता चुके हैं, इन हालात में उस इलाक़े के बासियों और उनके कुर्बो–जवार(आस–पास) में रहने वालों पर जिहाद फर्ज़े–ऐन हो जाता है। जब जिहाद फर्ज़े–ऐन हो जाए तो इजाज़त की शर्त साक़ित हो जाती है और किसी का किसी दूसरे को इजाज़त देने या ना देने का इख़्तियार बाक़ी नहीं रहता। लिहाजा ऐसे में औलाद वालदैन की, बीवी शौहर की, और मक़रूज़, कर्ज़ख्वाह की इजाज़त के बग़ैर निकलेंगे। इजाज़त तलब करने की ज़रूरत उस वक़्त तक साक़ित ही रहेगी जब तक कि दुश्मन मुसलमानों की सरज़मीन से निकाल नहीं दिया जाता या जब तक मुजाहिदीन की इतनी तादाद जमा नहीं हो जाती जो दुश्मन को निकालने के लिए काफी हो, ख़्वाह उसके लिए कुर्राए–ज़मीन पर बसने वाले तमाम ही मुसलमानों को निकलना पड़े। जिहाद जब फर्ज़े–ऐन हो जाए तो उसे वालदैन की इताअत पर फौक़ियत हासिल होती है हालांकि वालदैन की इताअत भी (आम हालात में) फर्ज़े–ऐन है। उस फौक़ियत की वजह ये है कि ***जिहाद दीन की हिफाज़त का ज़रिया है, जब कि वालदैन की इताअत से एक याद व इन्सानी जानों का तहफ़्फुज और देखभाल मक़सूद है, मगर चूंकि ''दीन की हिफाज़त''(हिमायतुलदीन), ''इन्सानी जान की हिफाज़त''(हिमायतुन्नफ़्स)से ज़्यादा अहम है इसलिए जिहाद को इताअते–वालदैन पर तर्जीह दी जाएगी।***

खुद जिहाद किस चीज़ का नाम है ?

इसीलिये, एक मुजाहिद ''तहफ़्फुजे–दीन''की ख़ातिर अपनी ''जान'' तक कुर्बान कर देता है और शहादत का आला रूत्बा पा लेता है। नीज़, जिहाद के लिए निकलने से दीन की हिफाज़त होना एक यक़ीनी अम्र है, जबकि ये महज़ एक ज़न्नी (गुमानवाली) बात है कि जिहाद के लिए निकलने से वालदैन को कोई नुक़सान पहुंचेगा और बिलाशुब्हा (फिक़ही क़ाइदे के मुताबिक़) ''यक़ीन''को''ज़न''पर तर्जीह हासिल है।

फ़र्ज़े–किफ़ाया और फ़र्ज़े–ऐन की मिसाल

फ़र्ज़ कीजिए की कुछ लोग साहिले–समन्दर पर सैर कर रहे हैं जिनमें से बाज़ तैराकी के माहिर भी हैं कि इतने में उन्हें एक डूबता हुआ बच्चा मदद के लिए पुकारता नज़र आता है। कोई तैराक भी उसे बचाने के लिए पानी में नहीं कूदता। बिलआख़िर जब एक तैराक हिम्मत करके आगे बढ़ने लगता है तो ***उसके वालिद उसे मना कर देते हैं।*** आप खुद ही बताएं, क्या दुनिया का कोई फ़क़ीह ये कहेगा कि इस सूरते–हाल में भी उस शख़्स को अपने वालिद की इताअत करनी चाहिए और बच्चे को डूबता छोड़ देना चाहिए?

अफ़ग़ानिस्तान के हालात पर यही मिसाल सादिक़ आती है। आज अफ़ग़ानिस्तान में मासूम बच्चे ज़िबह और इज़्ज़तें पामाल हो रही हैं, बेक़सूर लोगों को क़त्ल किया जा रहा है, लाशों के टुकड़े हर सिम्त बिखरे हुए हैं। ऐसे में जब ये सरज़मीन मदद के लिए पुकारती है और कुछ मुखलिस नौजवान उसकी पुकार पर लब्बैक कहते हुए आगे बढ़ना चाहते हैं तो हर सिम्त से उन पर तन्क़ीद की बौछार शुरू की जाती है और हर कोई उसे यही कहता है कि **"भला तुम वालदैन की इजाज़त के बग़ैर कैसे निकल सकते हो?"**

हक़ तो ये है कि डूबते हुए बच्चे को बचाना साहिल पर खड़े तमाशा देखने वाले हर तैराक पर फ़र्ज़ है। जब तक कोई तैराक उस की मदद के लिए आगे न बढ़े, तब तक तमाम ही तैराकों से ये मुतालबा है कि वोह बच्चे को बचाएं और सभी पर ऐसा करना फ़र्ज़ है। लेकिन अगर उनमें से कोई एक शख़्स आगे बढ़कर इस फ़र्ज़ की तकमील कर दे तो बाक़ी सबके कन्धों से गुनाह का बोझ हट जाता है, लेकिन अगर कोई भी आगे न बढ़े तो तमाम तैराक ही गुनाहग़ार होते हैं।

यहाँ ये बात भी ज़हनशीन रहनी चाहिए कि बच्चे को बचाने के लिए वालदैन से इजाज़त लेने की कोई ज़रूरत नहीं, बल्कि अगर वालदैन खुद मना करें तब भी उनकी बात नहीं मानी जाएगी। इसलिए कि फ़र्ज़े–किफ़ाया शुरू में फ़र्ज़े–ऐन ही की तरह सब पर लाज़िम होता है अलबत्ता फ़र्क़ सिर्फ इतना है कि फ़र्ज़े–ऐन के बरअक्स,अगर बाज़ लोग फ़र्ज़े–किफ़ाया अदा करें तो बाक़ी लोग गुनाहगार नहीं होते और कोई भी अदा न करे तो सब के सब गुनाहग़ार होते हैं।

इमाम, इब्ने–तैमिया रह.फ़र्माते हैं :

"बस जब दुश्मन हमलावर हो जाए तो किसी इख़्तिलाफ़ की गुंजाइश बाक़ी नहीं बचती, क्योंकि इस बात पर तो उम्मत का इजमा है कि (मुसलमानों के) दीन,जान और हुर्मत को हमलावर दुश्मन के शर से बचाना (सब पर)फ़र्ज़ है।"

(फ़त्हुल कुबरा– 4/607)

अलग़र्ज़,जिहाद अगर फ़र्ज़े–ऐन हो तो वालदैन से इजाज़त लेने की कोई ज़रूरत नहीं ,अलबत्ता फ़र्ज़े–किफ़ाया की सूरत में उनसे इजाज़त लेना ज़रूरी है।

ज़ेल (नीचे) में दी गई दोनों अहादीस को जमा करने से यही नतीजा निकलता है :

1. सहीह बुखारी में हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर बिन आस रज़ि.से रिवायत है :

"एक शख़्स नबी (ﷺ) के पास आया और आप (ﷺ) से जिहाद की इजाज़त चाही, तो आप (ﷺ) ने दरियाफ्त फर्माया : क्या तुम्हारे वालदैन ज़िन्दा हैं? उस शख़्स रजि. ने कहा, जी हाँ, फर्माया : फिर तुम उन (की खिदमत) में ही जिहाद करो।"

(ये हदीस उन हालात से मुताल्लिक़ है जब जिहाद फर्ज़े–किफ़ाया हुआ और इस बात की दलील है कि फर्ज़े–किफ़ाया जिहाद में वालदैन से इजाज़त लेना ज़रूरी है। (मुतर्जिम))

2. इब्ने–हिब्बान रह. हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ि. से ही रिवायत करते हैं :

"एक शख़्स रसूलुल्लाह (ﷺ) के पास आया और आप (ﷺ) से अफ़ज़ल तरीन अमल के बारे में पूछा,आप (ﷺ) ने फर्माया : "नमाज़"। उसने पूछा : उसके बाद? फर्माया : "जिहाद"। उसने कहा : मेरे वालदैन भी (ज़िन्दा) हैं। उस पर आप (ﷺ) ने फर्माया : मैं तुम्हें अपने वालदैन से नेक सुलूक करने का हुक्म देता हूँ उसने कहा : "उस ज़ात की क़सम ! जिसने आपको हक़ के साथ नबी बनाकर भेजा है ! मैं ज़रूर जिहाद करूंगा और ज़रूर ही उन दोनों (यानी अपने वालदैन) को छोड़कर निकल जाऊंगा । आप (ﷺ) ने फर्माया : तो तुम बेहतर जानते हो।"

(फतहुल बारी–106/6) (सही इब्ने–हिब्बान, मुसनद अहमद)

ये हदीस इब्ने–हिब्बान रह. ने रिवायत की है और उसे सहीह क़रार दिया है। हाफिज़ इब्ने–हजर रह. ने भी इसे फतहुलबारी में ज़िक्र किया है और इसकी सेहत पर सुकूत (ख़ामोशी) इख़्तियार की है। चुनांचे ये हदीस हसन या सहीह है। हाफिज़ इब्ने–हजर रह. इस हदीस की तशरीह में फर्माते हैं :

"दोनों हदीसों में मुवाफिक़त पैदा करते हुए,इस (आख़िर में ज़िक्र) हदीसे–मुबारक को उन हालात पर मुंतबिक़ किया जाएगा जब जिहाद फर्ज़े–ऐन हो जाए।'

(वालदैन से इजाज़त के मामले पर मज़ीद बहस के लिए बाब हफ्तुम देखिए।)(मुतर्जिम)

शैख़,उस्ताद या मुरब्बी से इजाज़त का मसला

सलफ़ व ख़लफ़ के किसी फक़ीह ने ये बात नहीं लिखी कि शैख़, उस्ताद या मुरब्बी को कोई ऐसा हक़ हासिल है कि उनके शार्गिद इबादात के मामले में उनसे इजाज़त तलब करें, चाहे वोह इबादत फर्ज़े–ऐन हो या फर्ज़े–किफ़ाया। जिस किसी को भी इस बात से इख़्तिलाफ है वोह कोई शरई नस(सुबूत) या वाज़ेह दलील लेकर सामने आए।

हर मुसलमान के लिए जाइज़ है कि वोह अपने शैख़ या मुरब्बी की इजाज़त के बग़ैर जिहाद के लिए निकले,***क्योंकि अल्लाह रब्बुलआलमीन की इजाज़त को हर दूसरी इजाज़त पर तर्जीह हासिल है*** और अल्लाह ने जिहाद की महज़ इजाज़त ही नहीं दी, इसकी फर्ज़ियत का हुक्म भी नाज़िल फर्माया है।

इब्ने–हुबैरा रह.फर्माते हैं :

"शैतान की चालों में से एक ये भी है कि वोह इन्सान के सामने मअनवी बुत खड़े कर देता है, और वोह अल्लाह को छोड़कर उनकी इबादत में लग जाता है। मसलन किसी शख़्स पर हक़ वाज़ेह हो जाता है, मगर वोह कहता है :"हमारे मज़हब में तो ये नहीं है," या वोह हक़ को छोड़कर किसी ऐसी हस्ती की बात मानता है जो उसके नज़दीक क़ाबिले–ताज़ीम है।" (अल इकदुल याकूतियहः 104)

काफ़िर मुमालिक जाने पर क्यों ऐतराज़ नहीं किया जाता ?

हक़ीक़त ये है कि अगर आज कोई तालिबे–इल्म साईस, तिब्ब(डॉक्टरी) या तारीख़ (इतिहास) वग़ैरह के मज़ामीन पढ़ने के लिए यूरोप या अमरीका जाना चाहे और अपने शैख़ और मुरब्बी से इजाज़त लिए बग़ैर ही निकल पड़े, तो न ही वोह कोई ऐतराज़ करेंगे न कोई और शख़्स। हालांकि उन काफिर मुमालिक में फ़ितने मुँह खोले बैठे हैं, ईमान–दुश्मन ज़ुल्मतें हर सिम्त छाई हुई हैं, ख़्वाहिशाते–नफ्सानी की बेक़ाबू मौजें हर आने वाले को अपनी लपेट में ले लेती हैं और बेहयाई की हैजानअंगेज़ फिज़ा कुछ इस अंदाज़ में हैवानी जज़्बात भड़काती हैं कि दिलों में हुब्बे–इलाह की आग के बजाए हुब्बुश्शहावात की नारे–नमरूद (हवस की आग) जल उठती है।

इसके बरअक्स, अगर यही तालिबे–इल्म रबात(मोर्चे) के लिए घर से निकले या जिहाद में शिरक़त के लिए महाज़ का रूख करे तो सब उस पर बरस पड़ते हैं और हर ज़बान उससे यही सवाल होता है कि "तुम बिला इजाज़त कैसे जा सकते हो?" शायद उसके शैख़ ने उस फर्माने– नबवी (ﷺ) पर तवज्जोह देने की ज़हमत ही ग़वारा नहीं की।

"अल्लाह की राह में एक रात पहरा देना ऐसी हज़ार रातों से अफ़ज़ल है जिनमें रात को क़याम किया जाए और दिन में रोज़े रखे जाएं।" (मुस्लिम)

"एक दिन रात रबात (यानी महाज़ पर पड़ाव) में गुज़ारना पूरा महीना रोज़े रखने और क़याम करने से बेहतर है और अगर वोह(रबात करनेवाला)शख़्स मर जाए तो उसका ये अमल जो वोह किया करता था, बराबर जारी रहेगा और उसे रिज़्क़ की फराहमी भी शुरू कर दी जाएगी और वोह(क़ब्र के) फ़ित्ने से महफ़ूज़ रहेगा।'

(सहीह मुस्लिम किताबुल–अमाराह)

और, सहीह बुख़ारी की *किताबुलजिहाद* में रिवायत है कि रसूले–अकरम (ﷺ) ने फर्माया :

"अल्लाह की राह में एक सुबह या शाम का निकलना दुनिया और उसमें मौजूद हर चीज़ से बेहतर है।" (बुख़ारी)

शैख़ और उनके तलामिज़ा, उस्ताद और उनके शागिर्दों, सबको चाहिए कि वोह

आमाले–स्वालेह में एक–दूसरे से आगे बढ़ने और नेकियों में सबक़त ले जाने की कोशिश करें। उन्हें चाहिए कि वोह रसूलल्लाह (ﷺ) की ये नसीहत कभी न भूलें।

''पाँच चीज़ों को पाँच चीज़ों से पहले ग़नीमत जानों, अपनी ज़िंदगी को अपनी मौत से पहले, अपनी सेहत को अपनी बीमारी से पहले, अपनी फ़राग़त को अपनी मसरूफियत से पहले, अपनी जवानी को अपने बुढ़ापे से पहले और अपने ग़िना (मालदारी) को अपने फक़्र (ग़रीबी) से पहले।''

उन्हें इस फर्माने–नवबी (ﷺ) पर भी ग़ौर करना चाहिए।

''क़िताल फी सबीलिल्लाह के लिए सफ में एक पहर खड़े होना (इबादत के लिए) साठ साल क़याम करने से बेहतर है।''

(अहमद, हाकिम व दारमी, सहीह जामेअ–अस्सग़ीर लिल्अलबानी–4305)

इमाम शाफई रह. फर्माते हैं : ''इस बात पर उम्मत का इजमा है कि जिस शख़्स पर रसूलल्लाह (ﷺ) की कोई *सुन्नत* वाज़ेह हो जाए, उसके लिए हलाल नहीं कि वोह किसी के भी कहने पर उसे तर्क करे।''

(बाब–शशुम)(अध्याय–छठा)

जिहाद बिलमाल की फ़र्ज़ियत

बिलाशुब्हा जान से जिहाद का मर्तबा माल से जिहाद की निस्बत ज़्यादा ऊँचा है। यही वजह है कि रसूलुल्लाह (ﷺ) के ज़माने में फी सबीलिल्लाह खर्च करने वाले साहिबाने–सरवत (मालदार लोगों) को भी अपनी जानें जिहाद में खपाने से माफ नहीं रखा गया। हज़रत उस्मान रज़ि. और हज़रत अ़ब्दुर्रहमान बिन औ़फ रज़ि.(मक्का व मदीना के अमीरतरीन लोगों)की वाज़ेह मिसालें हमारे सामने मौजूद हैं।

अपनी जान समेत जिहाद में शिर्कत इसीलिए ज़रूरी है कि जिस्म व रूह की जो आला तर्बियत व नश्वो– नुमा दुश्मन के ख़िलाफ अ़मली मअ़रके में होती है, वह कहीं और नहीं होती। जब ही तो रसूले–अकरम (ﷺ) ने एक सहाबी रज़ि. को नसीहत करते हुए फर्माया : *'और तुम पर लाज़िम है कि जिहाद करते रहना क्योंकि बिलाशुब्हा ये इस्लाम की रहबानियत है।'(अहमद सहीहुल जामेअ अस्सग़ीर लिलअलबानी–4305)* और यही वजह थी कि *जब एक सहाबी रज़ि. ने आप (ﷺ) से दरयाफ़्त फर्माया : "क्या (मुजाहिद) बन्दे को क़ब्र में आज़माइश का सामना करना पड़ता है ?"* आप (ﷺ) ने *जवाबन फर्माया : "(नहीं, बल्कि) उसके सर पर तलवारों का चमकना ही उसकी आज़माइश के लिए काफी है।"*

(हदीस, सहीह, निसाई सहीहुल जामेअ अस्सग़ीर लिलअलबानी–4359)

और इसीलिए रसूलुल्लाह (ﷺ) ने जिहाद छोड़कर दुनिया में मग़न हो जाने से ख़बरदार फर्माया और एक मर्तबा हल्के धारदार लोहे की तरफ इशारा करते हुए फर्माया :

"कभी ऐसा नहीं हुआ कि ये चीज़ किसी घर में दाखिल हुई तो अल्लाह ने साथ ही वहां ज़िल्लत भी दाखिल न फर्मा दी हो।"

(बुख़ारी, सिलसिलतुल हदीस सहीह–लिलअलबानी–10)

जब इस्लाम की बक़ा का मसला दर्पेश हो तो दुनियावी मसरूफ़ियात में मशगूल होकर रह जाना शरिअत की निगाह में हराम और मुहलिक गुनाह है।

एक सहीह हदीस में रिवायत है कि आप (ﷺ) ने फर्माया : *"जब तुम ईना (यानी सूदी लेन–देन) करने लगोगे और गाय बैलों की दुमें पकड़ लोगे, और खेती बाड़ी (की ज़िंदग़ी) में (मग़न होकर) मुतमईन हो जाओगे और जिहाद छोड़ बैठोगे तो अल्लाह तुम्हारे ऊपर ऐसी ज़िल्लत मुसल्लत कर देगा जो वोह उस वक़्त तक नहीं हटाएगा जब तक तुम अपने दीन की तरफ वापस न लौट आओ।"*

(अबुदाउद, सिलसिलतुल अहादीसुल सहीहतुल लिलअलबानी–11)

एक और मौक़े पर नबी–ए–अकरम (ﷺ) ने ये बात फर्माई : "जायदादें मत

बनाओ (और पेशे मत अपनाओ) वरना तुम दुनिया की मुहब्बत व रग़बत में मुब्तिला हो जाओगे।'' (तिर्मिजी किताबुल–ज़ुहद अनरसूलुल्लाह, हदीस सही, सिलसिलतुल अहादीस लिल अलबानी–12)

हदीस में वारिद होने वाले लफ्ज़ ''ज़यअतु'' का मतलब है ''जाएदाद'' या ''पेशा''।

मज़कूरा बाला अहादीस में रसूलुल्लाह (ﷺ) ने तमामतर मताऐ–दुनिया (माल व ऐशो–इशरत के सामान) का ज़िक्र फरमा दिया है और हमारी मसरूफियात के सारे ही अस्बाब गिनवा ड़ाले हैं, यानी ज़राअत, रिबा और सूदी हीलों वाली तिजारत, हैवानाती पैदावार, सनअतो–हर्फ़त (कारोबार) और कोई भी दूसरा पेशा। एक ऐसे वक़्त में जब इस्लाम की बक़ा का मसला दर्पेश हो, उम्मते–मुस्लिमा अपनी ज़िंदगी व मौत का मअ़रका लड़ रही हो, इन दुनियावी मसरूफियात में मशगूल होकर रह जाना शरिअ़त की निगाह में हराम और मुहलिक गुनाह है।

जिहाद–बिल–माल भी फर्ज़े–ऐ़न हो जाता है !

जहाँ तक ''जिहाद बिलमाल''का ताअ़ल्लुक़ है, तो जब भी मुजाहिदीन को माल की ज़रूरत हो यह फर्ज़े–ऐ़न हो जाता है, चाहे उस वक़्त''जिहाद बिन्नफ्स'बजाए खुद फर्ज़े–किफ़ाया ही क्यों न हो और जैसा कि इमाम इब्ने–तैमिया रह. ने लिखा, ऐसे हालात में ये फर्ज़ औरतों पर भी आईद होता है, हत्ताकि छोटे बच्चों का माल भी फी सबीलिल्लाह ख़र्च करना लाज़िम हो जाता है। (फतहुल कुबरा–4/607)

इसीलिए माल जमाकर करके रखने को भी ऐसे हालात में हराम क़रार दिया गया है जब उसकी ज़रूरत हो।

एक तरफ क़हतज़दगान (अकालग्रस्त), दूसरी तरफ जिहाद की ज़रूरियात !

जब इमाम इब्ने–तैमिया से पूछा गया : ''*अगर माल थोड़ा बढ़ जाए और एक तरफ क़हतज़दा भूखे हों और दूसरी जानिब जिहाद की ज़रूरियात हों, जिन्हें पूरा ना करने से जिहाद को नुक़सान पहुंचने का अंदेशा हो, तो तर्जीह किसे दी जाए ?*''

आपने जवाबन फर्माया : **''हम जिहाद को तर्जीह देंगे, चाहे क़हतज़दा लोगों को मौत ही क्यों न वाक़ेअ़ हो जाए। इसलिए कि मसला, ''मसला–ए–ततुर्रस''(यानी कुफ़्फ़ार के मुसलमान क़ैदियों को बतौर ढ़ाल इस्तेमाल करने के मसले) की तरह है, बल्कि इससे भी बढ़कर है। क्योंकि ततुर्रस के मसले में मुसलमान हमारे फेअ़ल से क़त्ल होते हैं जबकि उन (क़हतज़गान) की मौत अल्लाह के फ़ेअल से वाक़ेअ़ होती है।'' (फ़तावा अल–कुबरा, 607/4)**

(मुराद ये है कि अगर ढ़ाल बनाए गए मुसलमानों को मजबूरन मारना जाइज़ है तो जिहाद की नागुज़ीर ज़रूरतों के मौके़ पर क़हतज़दगान को मरते हुए छोड़ देना बदर्जा–ए– अव्वल जाइज़ होगा। याद रहे कि अगर कुफ़्फ़ार मुसलमान क़ैदियों को बतौर ढ़ाल इस्तेमाल करें और कुफ़्फ़ार को पछाड़ने की इसके सिवा कोई सूरत न हो कि मुसलमान भी साथ ही मारे जाएं,तो फ़ुक़हा हमला करने की इजाज़त देते हैं। (मुतर्जिम))

इमाम कुर्तबी रह. फर्माते हैं : ***"तमाम उलमा इस बात पर मुत्तफिक़ हैं कि अगर मुसलमानों को कोई माली ज़रूरत पेश आ जाए और उस वक़्त तक ज़कात अदा की जा चुकी हो, तो लोगों पर फर्ज़ होगा कि वह इस ज़रूरत को पूरा करने के लिए अपना ज़ाती माल ख़र्च करें।"(अलकुर्तबी–242/2)***

इसी तरह इमाम मालिक रह. फर्माते हैं :

"मुसलमानों पर अपने क़ैदियों को छुड़वाना फर्ज़ है,चाहे उनका सारा माल ही इस काम में खप जाए।"

इमाम कुर्तबी रह.इमाम मालिक रह.का ये क़ौल नक़ल करने के बाद लिखते हैं

"इस बात पर भी तमाम उलमा–ए–उम्मत का इजमाअ़ है।"

(अलकुर्तबी 242/2)

इस्लाम की निग़ाह में दीन का तहफ़्फ़ुज़,जान के तहफ़्फ़ुज़ से, जबकि जान का तहफ़्फ़ुज़, माल के तहफ़्फ़ुज़ से ज़्यादा अहम है। बस दौलतमन्द लोगों का माल मुजाहिदीन के खून से ज़्यादा क़ीमती नहीं कि वोह उसे बचा कर रख।

अगर मालदार लोग महज़ अपने एक दिन का खर्च अफग़ान मुजाहिदीन को दे दें –:

साहिबाने–सरवत(मालदार लोग) अपने माल के बारे में अल्लाह के हुक्म की तरफ मुतवज्जह हों। आज जिहाद को माली मुआविनत की सख़्त ज़रूरत है। मुसलमानों का दीन व ईमान खतरे में है और उनकी बस्तियां की बस्तियां फना होती नज़र आ रही हैं ,मगर कितने ही मालदार अब भी अपनी ख़्वाहिशात को रोकें, अपने आराम व आसाइश पर पैसा बर्बाद करने से बाज़ रहें और उन्हीं पैसों का रूख अफ़ग़ानिस्तान में बरसरे–पैकर मुजाहिदीन की तरफ फेर दें ... उन मुजाहिदीन की तरफ जो सर्दी से मर रहे हैं,जिनके नंगे पैरों को बर्फ चाट गई है,जिनके पास खाने को दो वक़्त की रोटी तक नहीं ,ना ही अपने दिफाअ़ और तहफ़्फ़ुज़ के लिए अस्लाह है ... मैं कहता हूँ कि अगर मालदार लोग महज़ अपने एक दिन का ख़र्च उन अफ़ग़ान मुजाहिदीन को दें, तो इन्शाअल्लाह ये बज़ाहिर मामूली सी कुर्बानी बहुत बड़ी तबदीली का बाईस होगी और फतह व नुसरत की जानिब पेशक़दमी का मुअस्सर ज़रिया बनेगी।

अब तो इस दौर के बहुत से जय्यिद उलमा भी ये फतवा दे चुके हैं कि अफ़ग़ानिस्तान

के मुजाहिदीन को ज़कात देना, कुर्बे –इलाही का ज़रिया बनने वाले अज़ीमतरीन अफ़आल में से है और उसका शुमार सदक़े की अफ़ज़लतरीन सूरतों में होता है। ***ये फतवा देने वालों में शैख़ अब्दुलअज़ीज़ बिन बाज़ रह. भी शामिल हैं।***

ख़ुलासा–ए–बहस

अव्वलः आज दुनिया के हर मुसलमान पर अपनी जान से जिहाद करना फर्ज़े–ऐन है।

दौमः आज किसी भी शख़्स को ये हक़ हासिल नहीं कि वोह किसी दूसरे को जिहाद पर जाने की इजाज़त दे या उससे मना करे। चुनांचे औलाद को वालदैन से इजाज़त लेने की भी कोई ज़रूरत नहीं।

सौमः जिहाद बिल माल भी आज फर्ज़े–ऐन है, और जब तक जिहाद को माल की ज़रूरत है मुसलमानों के लिए हराम है कि वोह माल जमा कर–करके रहें व रखें।

चहारूमः बिलाशुब्हा जिहाद तर्क करना नमाज़, रोज़ा तर्क करने की तरह ही है। बल्कि आज के हालात में तर्के–जिहाद का गुनाह इससे भी बढ़कर है। इब्ने–रूश्द ने इस बात पर तमाम उलमा का इत्तिफ़ाक़ नक़ल किया है कि ***अगर जिहाद फर्ज़े–ऐन हो जाए तो उसकी फर्ज़ियत, फर्ज़ हज से भी बढ़ कर होती है।***

सवालात, जो अक्सर ज़हनों में उठते हैं !

पहले चन्द इब्तदाई बातें समझना निहायत ज़रूरी हैं,

(अ) आज जिहाद की फर्ज़ियत नमाज़, रोज़े की मानिन्द, बल्कि उनसे भी बढ़कर है –:

इन सारे दलाइल के बाद ये बात बिल्कुल वाज़ेह हो जाती है कि अपनी जान से जिहाद करना आज फर्ज़े–ऐन है और उसकी फर्ज़ियत नमाज़ रोज़े ही की मानिन्द, बल्कि उनसे भी बढ़कर है। इमाम इब्ने–तैमिया रह.फर्माते हैं :

"ईमान लाने के बाद सबसे अहम फरीज़ा दीन व दुनिया को बर्बाद करने वाले हमलावर दुश्मन को पछाड़ना है।"(फ़तहुल कुबरा–608/4)

(दिफाई जिहाद के अहमतरीन फर्ज़ होने से ये मुराद क़तअन नहीं कि जिहाद हमेशा नमाज़ से ज़्यादा अहम होता है, क्योंकि ये बात मालूम है कि नमाज़ हमेशा फर्ज़े–ऐन होती है और इस्लाम के अरकाने–ख़म्सा में से है, जबकि जिहाद के मआमले में ये दोनों बातें नहीं पाई जातीं, बल्कि दिफाई जिहाद के अहमतरीन फर्ज़ होने का ताअल्लुक़ तो अदुव्वे–साइल के हमले के मौक़े से है, जब जिहाद आम हालात के बरखिलाफ फर्ज़े–ऐन हो जाता है।

रही बात ये कि अहमतरीन फर्ज़े–ऐन अल्लाह की तौहीद की मअरफ़त और इक़रार है तो ये बात यक़ीनन दुरूस्त है, लेकिन यहां से ऐतराज इसलिए ख़ारिज अज़ बहस है कि जिहाद के हुक्म के मुख़ातिब ही वो लोग हैं जो पहले से अक़ीदा–ए–तौहीद पर ईमान ला चुके हैं। खुद जिहाद भी तौहीद और उसकी दावत की बालादस्ती का ज़रिया है, आप (ﷺ) ने फर्माया, ***"मुझे क़यामत तक के लिए तलवार के साथ मबउस किया गया है, यहाँ तक कि अल्लाह वहदहू लाशरीक की इबादत की जाने लगे।" (अहमद)***

जहाँ तक ईमान की तफसीली मअरफत (ईमाने–मुफस्सिल) का तअल्लुक है जो दरअसल इल्म का समरा (निचोड़) है, तो उसका हुसूल फर्ज़े–किफाया की हैसियत रखता है। अहकामे–तौहीद की तफसीली तालीम की भी यही हैसियत है। इसलिए अगर जिहाद फर्ज़े–ऐन हो तो उसकी तालीम को मुक़द्दम रखना दुरूस्त न होगा। ताहम तौहीद के जिन मौज़ूआत की तालीम नागुज़ीर हो तो उसे हस्बे–मौक़ा जिहाद के साथ जारी रखा जाएगा। जैसा कि एक सहीह हदीस में जो सुनने–तिर्मिज़ी और मुस्नद अहमद में दर्ज है, वारिद है कि ग़ज़वाए हुनैन में जो नए मुसलमान शरीके–जिहाद थे, उन्होंने रसूलुल्लाह (ﷺ) से एक ऐसे दरख़्त (ज़ाते–अनवात) के तअय्युन का मुतालबा किया, जैसा मुश्रिकीन ने अपने लिए मुक़र्रर कर रखा था, वोह उसके पास मुअतकिफ़ रहते थे और अपना अस्लाह आविज़ाँ (लटकाया) करते थे।

रसूलुल्लाह (ﷺ) ने इसके जवाब में फर्माया था *'उस ज़ात की क़सम ! जिसके*

हाथ में मेरी जान है तुमने ऐसी ही बात की जैसी कि बनी इसराईल ने मूसा अलै. से कही थी, (ऐ मूसा अलै.!) हमारे लिए भी कोई माबूद ऐसा ही मुक़र्रर कर दीजिए जैसे (कुफ़्फ़ार) के ये माबूद हैं, फरमाया, वाक़ई तुम लोगों में बड़ी जिहालत है।'

अल्ग़रज़, रसूलुल्लाह (ﷺ) ने उन सब मुसलमानों को अपने साथ शरीके-जिहाद रखा। बल्कि आप (ﷺ) ने नए ईमान लाने वालों और सिर्फ तौहीद व रिसालत की बुनियादी ग़वाही देने वालों को भी जिहाद में शिर्क़त पर उभारा और शहादत मिलने पर जन्नत की बशारत दी। (मुतर्ज़िम)

दिफाई जिहाद के अहमतरीन फर्ज़े–ऐन होने के दलाइल

जिहाद के दौरान नमाज़ को मुअख़्खर करके दो वक़्त की नमाज़ें जमा भी की जा सकती हैं, नमाज़ की रकअत मुख़्तसर करना भी जाइज़ है और अदायगी–ए–नमाज़ की कैफियत तबदील करने की भी इजाज़त है। सहीहैन में रिवायत है कि रसूलुल्लाह (ﷺ) ने ग़ज़्वा–ए–ख़न्दक़ के मौक़े पर फर्माया :

''अल्लाह उनके घरों और क़ब्रों को आग से भर दे जैसे उन्होंने हमें सलाते-वुस्ता (यानी नमाज़े–अस्र) पढ़ने का मौक़ा नहीं दिया, यहां तक की सूरज गुरूब हो गया।'' (सही बुख़ारी)

इसी तरह एक मुजाहिद को रमज़ान में रोज़ा छोड़ने की इजाज़त भी है, जैसा कि सहीह मुस्लिम में रिवायतकर्दा हदीस है कि रसूलुल्लाह (ﷺ) ने फतहे–मक्का के मौक़े पर मक्का की जानिब सफर के दौरान (वक़्त से पहले) रोज़ा खोल लिया और सहाबा–ए–किराम रजि.से फर्माया :

''बेशक सुबह तुम्हें अपने दुश्मन से टकराना है और रोज़ा खोल (कर कुछ खा) लेना तुम्हारे लिए ज़्यादा कुव्वत का बाइस होगा, लिहाज़ा रोज़ा खोल लो।''

(सही मुस्लिम, किताबुस्सियाम)

फर्ज़े–ऐन में इजाज़त लेने या देने का सवाल ही नहीं

हम ये बात भी जान चुके हैं कि जिहाद जब फर्ज़े–ऐन हो जाए तो उसकी अदाएगी के लिए किसी से इजाज़त नहीं मांगी जाती। जिस तरह नमाज़े–फज्र अदा करने के लिए न वालदैन से इजाज़त तलब करने की ज़रूरत होती है, न अपने शैख़ से, न ही (क़बीले, जमाअत या मुल्क के) सरबराह से, इसी तरह जिहाद पर जाने के लिए भी किसी से इजाज़त की ज़रूरत नहीं। मसलन अगर कोई बाप बेटा एक ही घर में सो रहे हों और बेटा उठकर नमाज़े–फज्र अदा करना चाहे और बाप सोता रहे, तो क्या आप में से कोई भी ये कहेगा कि बेटे को नमाज़ के लिए बाप की इजाज़त तलब करना ज़रूरी है? ये तो एक मसला हुआ।

अब ज़रा एक लम्हें के लिए ये फर्ज़ कर लें कि ये बाप अपने बेटे को नमाज़े–फज्र पढ़ने से मना कर देता है ताकि उसके जागने से बाकी घरवालों की नींद ख़राब न हो, या

इसलिए कि बाप को नमाज़ सिरे से पसन्द ही नहीं, या किसी भी और वजह से, तो क्या ऐसे में बेटे के लिए बाप की बात मानना जाइज़ होगा ? इस सवाल का जवाब तो रसूले–अकरम (ﷺ) खुद ही अपने अहकामात में वाज़ेह फर्मा चुके हैं। (वाज़ेह रहे कि फर्माने–रसूल (ﷺ) है कि *इताअत सिर्फ़ नेकी के कामों में है।* (मुतर्जिम))

तर्के–जिहाद का हुक्म देना खालिक़े–कायनात की नाफर्मानी है।

रसूलुल्लाह (ﷺ) का फर्मान है :

"इताअत सिर्फ नेकी के कामों में है।"

(मुत्तफ़िक अलैह, सहीह जामेअ–अस्सग़ीर लिल अलबानी, 7379,3967)

आप (ﷺ) ने ये भी फर्माया :

'अल्लाह अज़्ज़वजल की नाफर्मानी में किसी मख़्लूक़ की इताअत (जाइज़) नहीं।'

(सही सनद, मुसनद अहमद व हाकिम)

नीज़ ये फर्माया :

"कोई इताअत नहीं की जाएगी उस शख़्स की जो अल्लाह अज़्ज़वजल की इताअत न करे।" (रिवायत सहीह, मुसनद अहमद)

चूंकि जिहाद तर्क करना ख़ालिक़े–कायनात की नाफर्मानी है, इसलिए मख़्लूक़ में से चाहे कोई भी इसका हुक्म दे, उसकी इताअत नहीं की जाएगी। जिहाद के लिए इजाज़त तलब करने की शरई हैसियत को मज़ीद वाज़ेह करने के लिए मैं अल्लाह से तौफीक़ मांगते हुए चन्द और बातें कहना चाहूँगा।

सहाबा–ए–किराम रजि.का तरीक़ा तो यही था कि जब एक बार जिहाद का अलम बुलन्द कर दिया जाता और उम्मत के लिए नफीरे–आम का ऐलान कर दिया जाता तो आप हज़रात रजि. जिहाद में शिर्कत के लिए रसूलुल्लाह (ﷺ) से इजाज़त नहीं मांगते थे। सहाबा रज़ि. तो जिहाद की नीयत करने और जंग के लिए नाम लिखवा देने के बाद रसूले–अकरम (ﷺ) से इज़्न तलब करने आते थे,जिसकी हैसियत जिहाद में शिर्क़त के लिए इजाज़त की नहीं होती थी, बल्कि वोह तो दरअसल जिहाद मे अपने क़िरदार से मुताअल्लिक़ मश्वरा होता था, जिसकी रोशनी में हर सहाबी रज़ि. अपनी ज़िम्मेदारी अदा करते थे।

इमाम अहमद रह. और इमाम नसाई रह. की रिवायतकर्दा सहीह हदीस में मुआविया बिन जाहिमा अलसुलैमी रज़ि.फर्माते हैं कि हज़रत जाहिमा रजि. नबी–ए–अकरम (ﷺ)के पास आए और फर्माया :

"ऐ अल्लाह के रसूल (ﷺ) ! मैं क़िताल में शिर्क़त का इरादा कर चुका हूँ और आपसे मश्वरा लेने आया हूँ।"

"आप (ﷺ) ने पूछाः क्या तुम्हारी वालदा (ज़िन्दा) है?"

सहाबी रजि. ने फर्माया : जी !

" तो आप (ﷺ) ने फर्माया, उन्हीं के पास रहो, क्योंकि बिलाशुब्हा जन्नत उनके क़दमों में है।"(नैलुल–अवतार लिल शौकानी 37/8)

जबकि एक और रिवायत में ये अल्फ़ाज़ मिलते हैं :**"मैंने अपना नाम (फलाँ) गज़वे में लिखवा दिया है"**

ये मामला तब है जब जिहाद फर्ज़े–किफ़ाया हो। लेकिन जब जिहाद फर्ज़े–ऐन हो जाए और शरिअ़त सब ही लोगों से निकलने का मुतालबा करे, तो ऐसे में रसूलुल्लाह (ﷺ) से जिहाद (से पीछे रह जाने) के लिए इजाज़त तलब करने को मुनाफिक़त की निशानी क़रार दिया गया है। अल्लाह तआला का फर्मान है :

لَا يَسْتَأْذِنُكَ الَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ اَنْ يُّجَاهِدُوْا بِاَمْوَالِهِمْ وَاَنْفُسِهِمْ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ بِالْمُتَّقِيْنَ **(44)** اِنَّمَا يَسْتَأْذِنُكَ الَّذِيْنَ لَا يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَارْتَابَتْ قُلُوْبُهُمْ فَهُمْ فِيْ رَيْبِهِمْ يَتَرَدَّدُوْنَ **(45)**

'जो लोग अल्लाह और रोज़े–आख़िरत पर ईमान रखते हैं वोह तो आपसे इजाज़त नहीं मांगते कि(पीछे रह जाएं,बल्कि चाहते हैं कि)अपने मालों और अपनी जानों से जिहाद करें और अल्लाह मुत्तक़ी लोगों से खूब वाक़िफ है। इजाज़त तो वही लोग मांगते हैं जो अल्लाह पर और आख़िरत के दिन पर ईमान नही रखते और उनके दिल शक में पड़े हुए हैं और वोह अपने शक में डंवाड़ोल हो रहे हैं।'

(सूरःतौबाः44-45)

इसी तरह हमारे इल्म में ऐसी कोई बात भी नही कि सहाबा–ए–किराम रज़ि. या ताबईन रह., रसूलुल्लाह (ﷺ) की वफ़ात के बाद खुलफा–ए–राशिदीन, यानी हज़राते अबुबक़र, उमर, उ़स्मान और अ़ली रज़ि. से जिहाद में शिर्कत के लिए इजाज़त मांगा करते थे। क्या आपके ख़्याल में जिहाद में शरीक होने वाला हर शख़्स पहले हज़रत अबूबकर सिद्दीक़ रज़ि. के पास जाकर इजाज़त तलब करता था? यक़ीनन,ऐसा कभी नहीं हुआ, क्योंकि अलमे–जिहाद का बुलन्द हो जाना और लश्कर का मैदान में निकल आना ही असल अहमियत का हामिल होता है, जिसके बाद किसी से इजाज़त की ज़रूरत बाक़ी नहीं रहती।

इजाज़त का मामला तो दुश्मन पर हमले की तदबीर व तर्तीब वग़ैरह से मुताअल्लिक़ है।

इसके बाद के दौर में भी हमें कोई बात नहीं मिलती कि मुसलमान रबात या जिहाद की इबादत अदा करने के लिए पहले अमीरूलमोमिनीन से इजाज़त हासिल करते थे,न ही हमें पूरी इस्लामी तारीख़ में कोई एक भी ऐसा वाक़िया नज़र आता है जब मुसलमानों के अमीर ने बिला–इजाज़त जिहाद व क़िताल करने के *'जुर्म'* में किसी शख़्स को सज़ा दी हो। इजाज़त तो ऐन क़िताल में या दुश्मन पर हमले के वक़्त जिहाद के अमीर या मअरके के क़ाइद से ली जाती है, (जिसका मक़सद ये पूछना नहीं होता कि ''मैं जिहाद में शिर्क़त करूं या नहीं?'' बल्कि) ये इजाज़त जिहाद में कूद पड़ने के बाद उमूरे–जिहाद को मुनज़्ज़िम और मुन्ज़बत (व्यवस्थित) अंदाज़ से चलाने के लिए ली जाती है,ताकि मुसलमानों में से कोई शख़्स क़ब्ल अज़ वक़्त (और बेतर्तीब अंदाज़ में) हमला करके मुजाहिदीन की सारी मन्सूबाबन्दी ही ख़राब न कर ड़ाले।

इमाम औज़ाई रह. और बाज़ दीग़र फुक़हा के नज़दीक इजाज़त की ज़रूरत सिर्फ उन लोगों को है जो बाक़ायदा फ़ौज का हिस्सा हों और उन्हें बैतुलमाल से तन्ख़्वाह मिलती हो। रमली रह. फर्माते हैं : ''इमाम या उसके नाइब की इजाज़त के बग़ैर दुश्मन के ख़िलाफ लड़ना मकरूह है, लेकिन उन (तीन) हालात में कोई कराहत नहीं :

1. जब अमीर ने जिहाद को मुअत्तल(स्थगित) कर रखा हो।
2. जब इजाज़त मांगने से असल मक़सद ही फौत हो जाए, (मसलन जब ये नज़र आ रहा हो कि अगर इजाज़त मिलने का इंतज़ार किया गया तो मुसलमानों का नुकसान हो जाएगा या दुश्मन कार्यवाही करके भाग निकलेगा,वग़ैरह–वग़ैरह)
3. जब ग़ालिब गुमान यही हो कि अमीर इजाज़त नहीं देगा, जैसाकि बल्क़ीनी रह. ने भी फर्माया है। *(नहायतुल महताज–60/8)*

मैं अपनी बात फिर दोहराऊंगा कि ये सब अहकामात उन हालात के लिए हैं जब जिहाद फर्ज़े–किफ़ाया हो। लेकिन जब जिहाद फर्ज़े–ऐन हो जाए तब इजाज़त मांगना या देना, कुछ बाक़ी नहीं रहता।

इब्ने–रूश्द फर्माते हैं :

''इमाम ग़ैर आदिल ही क्यों न हो उसकी इताअत ज़रूरी है, जब तक कि वोह मअसियते–इलाही (अल्लाह की नाफर्मानी) का हुक्म न दे और जिहाद के फर्ज़े–ऐन हो जाने के बाद जिहाद से रोकना मअसियत (गुनाह) ही है।''

(फ़तहुल–आला,अल मालिक लिल शैख़ अलीश–390/1)

जब तक मुजाहिदीन की तादाद नाकाफी हो, इजाज़त मांगने का सवाल ही पैदा नहीं होता !

इस मसले की मज़ीद वज़ाहत करने के लिए मैं ये बताता चलूं कि फर्ज़े–किफ़ाया में भी इजाज़त मांगने या देने का सवाल तब ही खड़ा होता है जब'किफ़ायत'पूरी हो जाए, यानी जब फरीज़–ए–जिहाद की अदाएगी के लिए मुजाहिदीन की तादाद काफी हो जाए। लेकिन इतनी तादाद जमा होने से पहले जिहाद का हुक्म सब ही के लिए होता है और जब तक कुछ लोग इस फर्ज़ को अदा नहीं कर देते जिहाद सब पर फर्ज़ रहता। यानी ''किफ़ायत'' के पूरे होने से पहले फर्ज़े–ऐन और फर्ज़े–किफ़ाया में कोई फर्क़ नहीं । लिहाज़ा जब तक 'किफ़ायत'पूरी नहीं होती, फर्ज़े–किफ़ाया जिहाद के लिए भी किसी से इजाज़त नहीं मांगी जाएगी । इजाज़त देने लेने का सवाल तब खड़ा होगा जब हमें मालूम हो जाए कि अर्ज़े–मअरके में मुजाहिदीन की इतनी तादाद जमा हो चुकी है जो फरीज़ा–ए–जिहाद की अदाएगी के लिए काफी है ।

ऐन मुमकिन है कि कोई शख़्स ये सारी बातें पढ़ने के बाद कहे कि : *हमें यक़ीन आ गया है कि जिहाद आज फर्ज़े–ऐन है, और इसके लिए किसी से इजाज़त लेने की क़तअन कोई ज़रूरत नहीं*, लेकिन चन्द अहम सवालात फिर भी बाक़ी हैं :

1. क्या नफीरे–आम के हुक्म की अमली तत्बीक़ आज के हालात में भी मुमकिन है?

2. क्या हम उन हालात में भी कुफ़्फ़ार के खिलाफ जिहाद करें जबकि मुसलमानों के पास कोई एक मुतफक़्क़ा अमीर या ख़लीफा नहीं है ?

3. क्या हम अफ़ग़ानिस्तान के क़िताल में शरीक हों हालांकि, मुजाहिदीन मुख़्तलिफ गिरोह और क़यादतों में बंटे हुए हैं ?

4. अगर सब लोग जिहाद छोड़ बैठें तो क्या एक मुसलमान तन्हा ही क़िताल करे ?

5. क्या हम ऐसे मुसलमानों के साथ भी मिलकर क़िताल करें जिनकी दीनी तर्बियत नाक़िस (अधूरी) है ?

6. क्या हमारे लिए कमज़ोरी के आलम में कुफ़्फ़ार से मदद तलब करना जाइज है ?

पहला सवाल

क्या नफीरे—आम के हुक्म की अमली तत्बीक़ आज के हालात में भी मुमकिन है ?

इस्लाम ने नफीरे—आम का जो हुक्म दिया है, यानी ये कि सब लोग जिहाद के लिए निकल आएं, हत्ताकि बीवी शौहर से (महरम साथ होने की शर्त के साथ !) और बेटा वालिद से इजाज़त लिए बग़ैर ही निकल पड़ें, बाज लोगों के ख़्याल में इस हुक्म पर अ़मल दरआमद तक़रीबन नामुमकिन है और उसकी वजूहात कुछ इस तरह गिनवाई जाती हैं किः

1. अगर सब लोग ही जिहाद के लिए निकल आएं तो कोई भी इस्लामी सरज़मीन ऐसी नहीं जहां मुसलमानों की कुल तादाद का दसवां हिस्सा भी समा सके।

2. अगर सब लोग जिहाद के लिए निकल पड़ें तो लोगों की दीनी तर्बियत का काम मुतास्सिर होगा, हालांकि यही तर्बीयत उम्मते—मुस्लिमा को तबाही से बचाने की आख़िरी उम्मीद है।

3. अगर हर शख़्स फ़िलिस्तीन, अफ़ग़ानिस्तान और दीग़र मक़बूज़ा सरज़मीनों का रूख कर ले तो पीछे मुसलमानों के अपने इलाक़ों में एक ख़ला पैदा हो जाएगा जिससे सेक्यूलर, क़ौमपरस्त, इश्तिराकी और बअसी अनासिर (बाहरी दुश्मन) फाएदा उठाएंगे।

जवाबः अगर मुसलमान नफीरे—आम से मुताअ़ल्लिक़ अपने रब का हुक्म और अपनी शरिअ़त का फ़ैसला महज़ ***एक हफ्ते के लिए*** नाफिज़ करें, सिर्फ एक हफ्ता उस पर पूरी तरह अ़मल करें तो फ़िलिस्तीन नजिस यहूदियों से पाक़ हो जाए। अगर ये पूरी की पूरी उम्मत जिहाद के लिए उठ खड़ी हो तो अफ़ग़ानिस्तान से काफिरों को निकाल बाहर करने के लिए भी बहुत ज़्यादा वक़्त दरकार नहीं होगा और थोड़े से अर्से के लिए जिहाद पर निकल जाने से न तो मआशरे में किसी दाई की कमी होगी, न मुसलमान ख़्वातीन के निकलने से उनके घर ज़मीन पर आ पड़ेंगे।

लेकिन हमारा हाल ये है कि हम हर मर्तबा बैठे इन्तिज़ार करते हैं, तमाशा देखते हैं यहां तक कि कुफ़्फ़ार एक और इस्लामी सरज़मीन पर क़ाबिज़ हो जाते हैं। फिर जब क़ब्ज़ा हो चुकता है तो हम चीख़ दहाड़कर, खुतबे झाड़कर, आंसू बहाकर और आहें भर—भर के उसका सोग़ मनाते हैं। (अल्लाह गवाह है कि आज यही सब कुछ हो रहा है। मुसलमानों के पेशाब की धार में बह जाने वाले इज़राईल को वरना क्या चीज़ बचाए हुए है? यक़ीनन, यह हमारा ***"वहन"*** ही है। (मुतर्जिम))

हमारे ज़हनों में क़ौमपरस्ताना तसव्वुरात रासिख़ (जमे हुए) हैं?

अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि इस्लाम के बारे में सोचते हुए भी हमारे ज़हनों पर क़ौमपरस्ताना तसव्वुरात ग़ालिब आ जाते हैं और हमारी निग़ाहें वो मस्नूई सरहदें पार नहीं कर पातीं जो मुआहिदा **साएक्स पेकय्** ने हमारे लिए खींची थी या जॉन **अन्तोन** नामी बर्तानवी या किसी और फ्रांसिसी काफ़िर ने जिनका तअय्युन किया था। आख़िर क्या वजह है कि शाम की सरहद पर वाक़ेअ अदन के शहर **''रमसा''** में रहने वाला मुसलमान उरदुन ही के एक और शहर **''उक़बा''** में रहने वाले शख़्स से गहरी वाबस्तग़ी का अहसास रखता है और उसके बारे में ऐसे ही फिक्र करता है जैसे एक मुसलमान भाई की फिक्र होनी चाहिए, हालांकि ''उक़बा'' उससे छः सौ (600) मील के फासले पर है ? लेकिन यही मुसलमान सरहद पार शाम के इलाक़े **''दरआ''** में बसने वाले शख़्स के बारे में न ऐसे जज़बात रखता है,न उसकी फिक्र करता है, हालांकि ''दरआ'' (शाम) और उक़बा (उरदुन) दोनों के बाशिन्दे मुसलमान हैं,बल्कि हो सकता है कि ''दरआ'' में रहने वाला दूसरे शख़्स से ज़्यादा दीनदार और पाबन्दे–शरई हो? बिलाशुब्हा ये रवय्ये हमारे ज़हनों में रासिख़ क़ौमपरस्ताना तसव्वुरात ही का नतीजा है।

(हिन्दुस्तान के जैसलमेर का एक मुसलमान सिन्ध,पाकिस्तान के अपने हमज़ात के लिये तो तड़पता है, मगर उसी पाकिस्तान के फाटा के मज़्लूम मुस्लिम के लिये नहीं तड़पता। बस, यही क़ौमपरस्ताना तसव्वुरात हैं।(मुतर्जिम))

दूसरा सवाल

क्या हम उन हालात में भी कुफ़्फ़ार के खिलाफ जिहाद करें जबकि मुसलमानों का कोई एक मुतफिक़्क़ा (एक राय)अमीर या ख़लीफा नहीं है?

जी हाँ, अमीर न हो तब भी जिहाद करना हमारी ज़िम्मेदारी बनती है ! ये बात तो किसी ने भी नहीं कही कि अगर मुसलमानों का एक मुत्तफ़िक़ा अमीर न हो तो जिहाद की फ़र्ज़ियत साक़ित हो जाती है। बल्कि इसके बरअक्स, हम देखते हैं कि सलीबी जंगों के दौरान और तातारियों के खिलाफ़ जिहाद में मुसलमानों के हर इलाक़े का अलग–अलग अमीर होता था, बल्कि बाज़ औक़ात एक इलाक़े में भी एक से ज़्यादा उमराअ् होते, मगर उसके बावजूद मुसलमानों ने उनके खिलाफ जिहाद किया। मसलन उस वक़्त **''हल्ब''** में अलग–अलग अमीर था , **''दमिश्क़''** में अलग–अलग और **''मिसर''** में तो एक से

ज़्यादा उमरा थे, जिनमें से बाज़ तो मुसलमान उमराअ् के ख़िलाफ भी सलीबियों से मदद तलब करते हुए नहीं शर्माते थे। जैसा कि "**शावर**" ने मिस्र के एक और अमीर "**जरग़ाम**" के खिलाफ सलीबियों से मदद हासिल की। लेकिन मुसलमानों ने उसमें से किसी बात को भी जिहाद से मुंह फेरने का उज़्र नहीं बनाय।

आज तक किसी आ़लिम ने ये नहीं कहा कि ऐसे हालात में जिहाद की फर्ज़ीयत साक़ित हो जाती है और ***"मुसलमानों की सरज़मीन से कुफ़्फ़ार को बाहर निकालना"*** फर्ज़ नहीं रहता। बल्कि हक़ीक़त तो ये है कि ऐसे में जिहाद की फर्ज़ीयत पहले से भी कई गुनाह बढ़ जाती है।

उन्दलूस (स्पेन) में भी मुसलमानों की सूरते–हाल उससे बहुत मुख़्तलिफ नहीं थी। जैसा कि एक शायर कहता है :

वोह गिरोहों में बँट चुके थे

और हर मुहल्ले में एक नया अमीरूलमोमिनीन और एक नया मिंबर था।

इसी तरह एक और शायर कहता है :

जिस चीज़ ने सरज़मीने–उन्दलूस में मेरा दिल उचाट किया, वोह बादशाहों का अपने लिए मुअ़तमद और मुअ़तज़द जैसे बुलन्द व बाला अलक़ाबात इख़्तियार करना था, ऐसे अलक़ाबात जिनके वो सिरे से मुस्तहिक़ ही न थे।"

बिल्कुल उस बिल्ली की तरह जो मुंह फुलाकर, पंजों के बल खड़ी होकर खुद को शेर ज़ाहिर करना चाहे। लेकिन इस इन्तिशार के बावजूद उलमा में से किसी ने नहीं कहा कि उन हालात में कोई जिहाद नहीं होता, बल्कि हम देखते हैं कि उन्दलूस में तो उलमा खुद पहली सफों में लड़ते थे।

ये भी मुमकिन है कि किसी मअ़रके में अमीर की तरफ से मुतय्यनकर्दा कोई क़ाएदा न हो, जैसाकि ग़ज़्वाए मौता के मौक़े पर हुआ। चुनांचे रसूलुल्लाह (ﷺ) की तरफ से मुतय्यनकर्दा तीनों क़ाईदीन की शहादत के बाद, हज़रत ख़ालिद बिन वलीद रज़ि. उठे और उन्होंने अ़लम संभाल लिया, हालांकि उन्हें रसूलुल्लाह (ﷺ) की तरफ से मुतय्यन नहीं किया गया था,और अल्लाह ने उन्हीं रज़ि. के हाथों मुसलमानों के लश्कर को बचा निकाला। रसूलुल्लाह (ﷺ) ने न सिर्फ आप रज़ि. के इस फेअ़ल को दुरूस्त क़रार दिया बल्कि आप रज़ि. की तारीफ़ भी फर्माई।

खुद ख़िलाफत के क़याम का असल रास्ता भी जिहाद है।

इसी तरह ये भी मुमकिन है कि किसी इमाम या अमीरूलमोमिनीन का वुजूद ही न हो, लेकिन न तो उससे क़िताल की फ़र्ज़ियत पर कोई असर पड़ता है, ना ही ***"मुसलमानों की सरज़मीनों से कुफ़्फ़ार को निकालने'*** का फर्ज़ साक़ित होता है।

"हमारा ये काम नहीं कि हम बैठकर "विलायते–कुबरा"के क़ायम होने और ख़िलाफ़त के लौटने का इंतज़ार करें, क्योंकि इस्लामी ख़िलाफत अमली दुनिया से कोसों दूर बैठकर उलूमो–फुनून पर उबूर (महारत)हासिल करने और बहुत कुछ पढ़ लेने से कायम नहीं होती बल्कि ***इसके क़याम का तो असल रास्ता जिहाद है, जिसके ज़रिए "विलायते–ख़ासा" यानी क़िताल की ईमारत, "विलायते–आम्मा" यानी खिलाफ़त में तबदील हो जाती है।"***

अगर किसी वक़्त मुसलमानों का कोई ख़लीफा या अमीरूल–मोमिनीन न हो, तो मुजाहिदीन क्या करें ?

अगर किसी वक़्त मुसलमानों का कोई ख़लीफा या अमीरूलमोमिनीन न हो, तो मुजाहिदीन खुद अपने में से किसी एक शख़्स को अपना अमीर चुन लेंगे। वही उनके मुआमलात को मुनज़्ज़म करेगा, उनकी शिराज़ाबन्दी करेगा और उनके दर्मियान आपसी तआवुन का ज़रिया बनेगा।

एक सहीह हदीस में सहाबी–ए–रसूल (ﷺ) हज़रत उक़्बा बिन आमिर रज़ि. से रिवायत है, आप रज़ि. फ़र्माते हैं :

"रसूलुल्लाह (ﷺ) ने एक सरिया रवाना फर्माया। बस मैंने(सरिये में शरीक) एक शख़्स को तलवार से मुसल्लाह किया। फिर आप रज़ि. फर्माते हैं कि जब वोह शख़्स वापस आया तो उसने(मुझे सरिये की रूदाद सुनाते हुए) कहा मैंने रसूलुल्लाह (ﷺ) को कभी किसी को यूं मलामत करते नहीं देखा जैसे उन्होंने हमें मलामत की है। आप (ﷺ) ने फर्माया : क्या तुमसे इतना भी नहीं हो सकता कि जब मैं किसी शख़्स को(अमीर बनाकर) भेजूं और वोह मेरे हुक्म के मुताबिक़ न चले तो तुम उसकी जगह किसी ऐसे शख़्स को(अमीर) बना लो जो मेरे हुक्म के मुताबिक़ चले।"

(रवाहु–अबूदाऊद व अहमदो–हाकिम व उनज़र फतहुलरब्बानी–45/41)

(सरिया–जिसमें रसूलुल्लाह (ﷺ) बज़ाते–ख़ुद शरीक न हों,उसे सरिया कहते हैं।)

इस वाक़िए में रसूलुल्लाह (ﷺ) ने सहाबा रज़ि.को इस बात पर उभारा कि अगर ज़रूरत पड़े तो ऐसे अमीरे–लश्कर को भी बदल डालें जिसे आप (ﷺ) अपने मुबारक हाथों से अलम थमा चुके हों, और उसकी जगह पर नया अमीर मुक़र्रर कर लें। तो जहां सिरे से ही कोई अमीर न हो, क्या वहां अमीरे–जिहाद मुक़र्रर करने की ज़रूरत शदीदतर नहीं हो जाती?

इमाम की अ़दम मौजूदगी(ग़ैरमौजूदगी) की वजह से जिहाद मुअख़्ख़र नहीं किया जाएगा !

इमाम इब्ने–कुदामा रह. "अल्मुग़नी" में फर्माते हैं :

'बस इमाम की अ़दम–मौजूदगी की वजह से जिहाद मुअख़्ख़र (स्थगित) नहीं होगा, क्योंकि ताख़ीर करने से जिहाद की मस्लिहत ही फौत हो जाती है।'

(अलमुग़नी 253/8)

और जब लोग किसी को अपना अमीर चुन लें तो उसकी इताअ़त करना वाजिब हो जाता है। फतहुल उला अल–मालिक में लिखा है :

"शैख़ मयारा रह.नक़ल करते हैं कि जब कोई अमीर न हो और लोग किसी नुमायां शख़्सियत पर मुत्तफिक़ हो जाएं (और उसे अपना अमीर बना लें), ताकि वोह उनके मामलात संवारे और उनके ताक़तवर लोगों को कमज़ोरों पर ज़्यादती न करने दे,और वोह शख़्स इस काम में अपनी सारी सई व कुव्वत भी लगा रहा हो, तो उसके खिलाफ उठ खड़े होना जाइज़ नहीं है। यक़ीनन ऐसी हरकत करने वाला इस्लाम की वहदत तोड़ना चाहता है और मुसलमानों के दर्मियान तफरीक़ पैदा करने का इरादा रखता है। चुनांचे सहीह मुस्लिम की हदीस है :

"अनक़रीब बहुत फितना व फसाद होगा, बस जो शख़्स इस उम्मत के मुत्तहिद होने के बाद उसकी वहदत को फाड़ना चाहे, उसको तलवार से मार डालो, चाहे वोह कोई भी हो।" (सहीह मुस्लिम, किताबुल–इमारह)

तीसरा सवाल

क्या हम अफ़ग़ानिस्तान के क़िताल में शरीक हों, हालांकि मुजाहिदीन मुख़्तलिफ गिरोहों और क़यादतों में बंटे हुए हैं ?

मुजाहिदीन के मुख़्तलिफ़ ग़िरोहों और क़यादतों में बंटे होने के बावजूद अफ़ग़ानिस्तान में क़िताल करना हर मुसलमान पर फ़र्ज़ है, क्योंकि हमलावर मुलहिदों के ख़िलाफ़ मुसलमानों के दिफाअ का वाहिद ज़रिया क़िताल ही है और ऐसी कोई दलील मौजूद नहीं जो मुलहिद काफिरों के खिलाफ इस सूरत में लड़ने से मना करती हो जब मुसलमान ज़रूरत से ज़ाइद इस्लामी मज़मूआत और तन्जीमात में बंटे हुए हों। अगर मुजाहिदीन के क़ाईदीन एक से ज़्यादा हों तब भी क़िताल फर्ज़ रहेगा और हर क़ाइद को अपने–अपने मजमूअे का अमीरे–क़िताल तसव्वुर किया जाएगा।

❖ चौथा सवाल ❖

अगर सब लोग जिहाद छोड़ बैठें तो क्या एक मुसलमान तन्हा ही क़िताल करे ?

जी हाँ, मुसलमान की ज़िम्मेदारी तो यही बनती है कि उसे तन्हा भी क़िताल करना पड़े तो करे, क्योंकि अल्लाह अज़्ज़वजल अपने नबी (ﷺ) को मुख़ातिब करते हुए फर्माते हैं:

فَقَاتِلْ فِى سَبِيلِ اللّٰهِ لَا تُكَلَّفُ إِلَّا نَفْسَكَ وَحَرِّضِ الْمُؤْمِنِينَ عَسَى اللّٰهُ أَن يَكُفَّ بَأْسَ الَّذِينَ كَفَرُوا وَاللّٰهُ أَشَدُّ بَأْساً وَأَشَدُّ تَنكِيلاً(84)

"बस तुम जंग करो अल्लाह की राह में, तुम अपनी ज़ात के सिवा किसी के ज़िम्मेदार नहीं, अल्बत्ता मोमिनों को लड़ाई पर उभारो। अल्लाह से उम्मीद है कि वोह काफ़िरों के ज़ोर को तोड़ देगा और अल्लाह सबसे ज़्यादा ज़ोर वाला और सबसे सख़्त सज़ा देने वाला है।" (सूर : निसा 84)

ये आयाते–मुबारक, नबी–ए–अकरम (ﷺ) और आप (ﷺ) के हर उम्मती को दो बातों का हुक्म देती हैं :

1. क़िताल–फ़ी–सबीलिल्लाह का, चाहे तन्हा ही करना पड़े ।
2. मोमिनों को क़िताल पर उभारने का।

और ये दोनों ही काम फर्ज़ हैं, क्योंकि जब किसी काम का हुक्म दिया जाए तो उससे यही मुराद होती है कि उसे पूरा करना फर्ज़ है।

नीज़ अल्लाह रब्बुलइज़्ज़त ने इस आयते–मुबारका में क़िताल की हिक्मत भी बयान फरमा दी है, यानी **"कुफ़्फ़ार का ज़ोर तोड़ना"**, क्योंकि कुफ़्फ़ार तभी हमारे वुजूद से ख़ौफजदा होंगे जब हम उनके खिलाफ़ क़िताल करते रहेंगे।

وَقَاتِلُوهُمْ حَتَّى لَا تَكُونَ فِتْنَةٌ وَيَكُونَ الدِّينُ كُلُّهُ لِلّٰه **(39)**

"और उनसे जंग करो यहां तक कि फितना बाक़ी न रहे और दीन सिर्फ अल्लाह ही के लिए ख़ालिस हो जाए।" (सूर : अन्फाल, 39)

लिहाज़ा क़िताल तर्क़ करने से फितना यानी शिर्क़ फैल जाता है और कुफ़्फ़ार ग़ालिब आ जाते हैं।

सहाबा रिज़्वानुल्लाह अलैहि अज़्मईन ने सूरः निसा की मन्दर्जा–बाला आयत को इन्हीं ज़ाहिरी मअनों में समझा था। अबू इस्हाक़ रह. फर्माते हैं कि *मैंने हज़रत बराअ् बिन आजिब रज़ि. से पूछा : अगर एक शख़्स तन्हा ही मुश्रिकों पर कूद पड़े तो क्या उसका ये फेअल अपने आपको खुद ही हलाक़त में ड़ालने के मुतरादिफ है ? हज़रत बराअ् रज़ि. फर्माते हैं : नहीं (ऐसा नहीं है), क्योंकि अल्लाह ने अपने रसूल(ﷺ) को भेजा और फर्माया : (बस तुम जंग करो अल्लाह की राह में, तुम अपनी ज़ात के सिवा किसी के ज़िम्मेदार नहीं) "अपने आपको हलाक़त में ड़ालने" वाली आयत तो(फ़ी सबीलिल्लाह) ख़र्च करने से मुताअल्लिक़ है।"*

(क़ुर्आन की यह आयत व हज़रत बराअ बिन आजिब रज़ि. का सरीह जवाब इस्लाम में "ख़ुदकुश हमलों" के जायज़ होने का खुला सुबूत है।)

हज़रत बराअ् रजि. ने अपने जवाब के आख़िर में सूरः बक़रह की इस आयत की तरफ इशारा फर्माया है,

"अल्लाह की राह में ख़र्च करो और अपने हाथों अपने आपको हलाक़त में न डालो।"

चुनांचे दुश्मन के खिलाफ तन्हा ही क़िताल करना हलाक़त नहीं, बल्कि अल्लाह की राह में (जान व माल) ख़र्च करने से हाथ खींच लेना हलाक़त है। इमाम इब्नुलअरब रह.**"अहकामुल क़ुर्आन"** में फर्माते हैं : "ऐसे हालात भी पैदा हो सकते हैं जब नफ़ीरे–आम (यानी हर एक का निकलना) फर्ज़ हो जाए। लिहाज़ा दुश्मन जब मुसलमानों की किसी सरज़मीन पर हमलावर हो या उनके किसी इलाक़े को घेर ले तो जिहाद तअय्युन (तरतीब) के

साथ हर एक पर फर्ज़ हो जाता है और तमाम लोगों के लिए जिहाद करना और उसकी खातिर घरों से निकलना लाज़िम हो जाता है। ऐसे में अगर अदाएगी–ए–फर्ज़ में कोताही करें तो गुनाहग़ार होंगे।''

बस अगर नफ़ीरे–आम का हुक्म इस वजह से हो कि दुश्मन हमारे किसी इलाक़े पर क़ब्ज़ा कर लें या मुसलमानों को पकड़ कर क़ैदी बना लें तो सब लोगों पर फर्ज़ हो जाता है कि वोह जिहाद के लिए निकलें और हर हाल में निकलें, ख़्वाह हल्के हों या बोझल, सवार हों या पैदल, गुलाम हों या आज़ाद ...जिसके वालिद ज़िन्दा हों वो उनकी इजाज़त के बग़ैर निकले और जिसके वालिद फौत हो चुके हों वोह भी निकलें, (और जिहाद करता रहे) यहां तक कि अल्लाह का दीन ग़ालिब आ जाए, मुसलमानों की सरज़मीन से दुश्मन का शर दूर हो जाए, इस्लामी सरहदें महफ़ूज़ हो जाएं, दुश्मन रूस्वा हो जाए, सारे मुसलमान क़ैदी आज़ाद हो जाएं ... और इस बारे में उलमा के दर्मियान कोई इख़्तिलाफ नहीं पाया जाता। लेकिन (सवाल ये है कि) अगर सब लोग ही जिहाद छोड़ कर बैठे रहें तो अकेला बन्दा क्या करे ? उसे चाहिए कि वोह कोई क़ैदी तलाश करे और पैसे देकर उसे आज़ाद कराए, और अगर कुदरत रखता हो तो अकेला ही क़िताल करे और अगर उसकी कुदरत भी न रखता हो तो किसी और मुजाहिद को तैयार करे और उसे सामान फराहम करे।''

(अहकामुल–कुर्आन 154/2)

तन्हा क़िताल करना अल्लाह रब्बुल–इज़्ज़त को बहुत खुश करता है !

हक़ीक़त तो ये है कि किसी शख़्स का तन्हा क़िताल करना अल्लाह रब्बुल–इज़्ज़त को बहुत खुश करता है। इमाम अहमद रह. और इमाम अबूदाउद रह. ये हसन हदीस रिवायत करते हैं :

''हमारा इज़्ज़त व जलाल वाला रब उस बन्दे से खुश हो जाता है जो अल्लाह के रास्ते में लड़े, फिर जब वो पस्पा हो (कर भाग) जाए, यानी उसके साथी, तो उसे समझ आ जाए कि (फरार, हराम होने की वजह से) उस पर क्या ज़िम्मेदारी बनती है और वोह वापस लौट आए और (लड़ता रहे) यहां तक कि उसका खून बहा दिया जाए तो (ऐसे मुजाहिद के लिए) अल्लाह तआला अपने फरिश्तों से फर्माते हैं: 'देखो, मेरे इस बन्दे को! ये उस (जज़ा) की रग़बत में जो मेरे पास है और उस (अज़ाब) के खौफ़ से जो मेरे पास है, वापस लौट आया यहां तक कि उसका खून बहा दिया गया।''

पांचवा सवाल

क्या हम ऐसे मुसलमानों के साथ भी मिलकर क़िताल करें जिनकी दीनी तर्बियत नाक़िस (अधूरी) है?

कई लोग, जिनमें बाज़ मुख़्लिसीन भी शामिल हैं, ये सवाल पूछते हैं कि हम अहले–अफ़ग़ानिस्तान के साथ मिलकर कैसे जिहाद करें, जबकि उनमें सच्चे झूठे, हर किस्म के लोग मौजूद हैं, सिरगेट और नस्वार(तम्बाकू) का इस्तेमाल उनके यहां आम है, उनमें से बाज़ तो अपना अस्लाह बेचकर भी पैसा कमाने से गुरेज़ नहीं करते। इसी तरह बाज़ लोगों को ये ऐतराज़ है कि *अहले–अफ़ग़ानिस्तान की अक्सरियत मज़हबे–हनफ़ी के अलावा किसी मज़हब को बर्दाश्त नहीं करती और उनमें बहुत से लोग ऐसे भी हैं जो तावीज़ वग़ैरह बान्धते हैं। मैं उन चीज़ों का शरई हुक्म बयान करने से पहले एक सवाल पूछना चाहूंगा* : मुझे पूरी दुनिया में कोई एक जगह ऐसी दिखा दें जहां बसने वाले मुसलमानों में इस तरह के मसाइल न पाए जाते हों? तो क्या हम इन मसाइल की वजह से जिहाद से हाथ खींच लें और कुफ़्फ़ार को खुला छोड़ दें कि वोह मुसलमानों की जिस सरज़मीन पर चाहे काबिज़ हो जाएं? जहां चाहे घूमें ?

जहां तक जवाब का ताअल्लुक़ है तो बिलाशुब्हा ऐसे लोगों के साथ मिलकर क़िताल करना भी फ़र्ज़ है जिनकी दीनी तर्बियत नाक़िस हो, क्योंकि क़िताल का हुक्म **दफ़उआज़मुल ज़ररीन** के फ़िक़्ही क़ायदे पर बनी है, जिसमें ये उसूल है कि *जब दो ज़रूरी ज़रर सामने(नुकसानदायक चीज़ें) हों, तो उनमें से ज़्यादा बड़े ज़रर (नुकसान, ख़तरे)को दूर करना तर्जीह क़रार पाएगा।*

ज़ररे–आम को दूर करने के लिए ज़ररे–ख़ास बर्दाश्त कर लिया जाएगा। शदीदतर ज़रर को कमतर ज़रर से ज़ाइल(ख़त्म)किया जाएगा।

(अलमअदाह, रक़म–26)

"जब दो मफासिद का सामान हो तो उसमें से कमतर को इख़्तियार करके ज़्यादा नुक़सानदेह मफ़सदे से बचा जाएगा।"

"जब दो में से एक ख़राबी को इख़्तियार करना नागुज़ीर हो तो कमतर ख़राबी को इख़्तियार कर लिया जाएगा।"

चुनांचे इस मआमले में भी कमतर ख़राबी को इख़्तियार करना लाज़िम है। अब खुद ही फैसला कर लीजिए कि ज़्यादा बड़ी कामयाबी कौनसी है ? कुफ़्फ़ार का अफ़ग़ानिस्तान पर क़ाबिज़ होना और उसे एक काफिर मुल्क बनाकर वहां क़ुर्आन और इस्लाम को मम्नूअ(निषिद्ध) क़रार देना, या फिर एक ऐसी क़ौम के साथ मिलकर जिहाद करना जिसमें बाज़ कमजोरियां या गुनाह पाए जाते हों ?

क़िताल हर नेक और फ़ाजिर मुसलमान के साथ मिलकर किया जाएगा !

इमाम इब्ने–तैमिया रह. **मजमूउलफ़तावा** में फ़र्माते हैं : ''लिहाज़ा अहले–सुन्नत–वल–जमाअ़त के उसूलों में ये बात शामिल है कि क़िताल हर नेक और फ़ाजिर (यानी बद अ़मल मुसलमान)के साथ मिलकर किया जाएगा,क्योंकि रसूलुल्लाह(ﷺ)का फ़र्मान है,

यक़ीनन अल्लाह किसी फ़ाजिर बन्दे से भी इस दीन को तक़्वीयत पहुंचा देते हैं ।'(बुख़ारी,क़िताबुल–जिहाद)

और यह भी कि : ***''यक़ीनन अल्लाह तबारक व तआ़ला इस दीन को ऐसी क़ौमों से भी तक़्वीयत पहुंचाएंगे जिनका भलाई में कोई हिस्सा नहीं होगा।'' (मुसनद अहमद)***

बस जब क़िताल सिर्फ़ फ़ाजिर उमरा या फ़ाजिर लश्कर के साथ मिलकर ही करना मुमकिन हो तो हमारे लिये दो ही रास्ते बाक़ी बचते हैं : या तो उनके साथ क़िताल में शरीक न हुआ जाए, मगर ऐसा करने से वोह (कुफ़्फ़ार) ग़ालिब आ जाएंगे जो हमारे दीन व दुनिया, दोनों के लिए उन (फ़ाजिर मुसलमानों) से कहीं ज़्यादा नुक़सानदेह हैं। या फिर फ़ाजिर अमीर (या फ़ाजिर लश्कर) के साथ मिलकर क़िताल किया जाए और ऐसा करने से ज़्यादा बड़े फ़ुज्जार (यानी कुफ़्फ़ार) को पछाड़ा जा सकेगा और अगर सब नहीं,तो बेशतर इस्लामी शआइर भी क़ायम हो सकेंगे। लिहाज़ा ऐसी सूरत में या इससे मिलती जुलती दीग़र सूरतों में ये दूसरी राह इख़्तियार करना ही फर्ज़ है। बल्कि हक़ीक़त तो ये है कि ख़ुलफ़ा–ए–राशिदीन रज़ि.के अदवार में भी बहुत सी जंगें इसी तरह लड़ी गई।

(यानी इस्लाम में नए–नए दाख़िल होने वाले लोग गिरोह दर गिरोह बग़ैर किसी लम्बी चौड़ी तालीम व तर्बियत के जिहाद में कूद पड़े और सहाबा रजि.ने उनके साथ मिलकर ही जिहाद किया। (मुतर्जिम))

''घोड़े की पेशानी में भलाई रख दी गई है जो क़यामत तक उसके साथ रहेगी,(ये भलाई है जिहाद की) अज्र और माले–ग़नीमत।''

(बुख़ारी, किताबुल–जिहाद)

बस, जब तक अफ़ग़ानिस्तान में बसने वाले लोग मुसलमान हैं उनके साथ मिलकर क़िताल करना फ़र्ज़ है। अफ़ग़ानिस्तान में बुलन्द किया जाने वाला अ़लमे–जिहाद इस्लामी है और वहां बरसरे–पेकार मुजाहिदीन का ऐलान कर्दा हदफ़ भी, ***''ज़मीन पर अल्लाह के दीन का क़याम''*** है, लिहाज़ा आज जिहादे–अफ़ग़ानिस्तान से मुंह फैरने का कोई उज्र नहीं है।

शरिअत के इसी हुक्म पर अमल न करने का नुक़सान हम फ़िलिस्तीन में उठा रहे हैं। अगर इब्तिदाई दौर की तमाम ख़राबियों के बावजूद, मुसलमान फ़िलिस्तीन में जिहाद करते तो ये कभी भी हमारे हाथों से न निकलता। पर उम्मते–मुस्लिमा उस वक़्त हरकत में नहीं आई और देखते ही देखते हालात बहुत बिगड़ गए और जॉर्ज बुश, नायफ़ हवात्मा और फादर कैपीसी (यहूदो–नसारा की बॉडी) के आने के बाद रही सही कसर भी निकल गई। जहां तक अफ़गान मुजाहिदीन की क़यादत का ताअल्लुक़ है, तो वोह सबके सब नमाज़ पढ़ते हैं, रोज़े रखते हैं,दीनी शआइर क़ायम करते हैं और अपने आपको इस्लाम ही से मंसूब करते हैं। अगर मुसलमानों का कोई भी गिरोह कुफ़्फ़ार, अहले–किताब या मुलहिदों के खिलाफ़ लड़ रहा हो तो जब तक वोह(मुजाहिदीन) मुसलमान रहें, उनके साथ मिलकर क़िताल करना फर्ज़ है, ख्वाह वह कितने ही फ़ासिक़ व फ़ाजिर क्यों न हों। इमाम शौकानी रह. नेलुलऔतार में फ़र्माते हैं :

इस बात पर उलमा का इजमाअ है कि काफ़िरों के ख़िलाफ फ़ासिक़ों से मदद लेना जाइज़ है। (नेलुलऔतार–44/8)

छठा सवाल

क्या कमज़ोरी के आलम में हमारे लिए कुफ़्फ़ार से मदद तलब करना जाइज़ है ?

बाज़ लोगों की राय है कि जिहादे–अफ़ग़ानिस्तान के लिए अमरीका और मग़रिबी मुमालिक से मदद तलब करनी चाहिए। इसी तरह बाज़ दीगर लोगों का ख़्याल है कि फिलिस्तीन में यहूद के ख़िलाफ़ जिहाद के लिए रूस से मदद मांगनी चाहिए। *(मालूम हो कि यह फ़तवा रूसी अफ़वाज़ के काबुल पर कब्ज़े व मुजाहिदीन की मज़ाहिमत (प्रतिरोध) के शुरूआती दौर का है। उस वक़्त रूस व अमेरिका में कोल्ड वार भी चल रहा था, मगर आज के हालात में सिर्फ दुश्मन का नाम व चेहरा बदल गया है मगर ज़मीनी हक़ीक़त पहले से भी बदतर हो चुके हैं। हाँ, मुजाहिदीन के सरों पर रूस को मार भगाने के तमग़–ए–इम्तियाज़ जुड़ चुके हैं,जो उनको अपने पुराने तर्जुबात की रोशनी में अमेरिका से जिहाद करने में मददगार साबित हो रहे हैं।(मुतर्जिम))*

मैं ये बात बिल्कुल वज़ाहत से कहना चाहूंगा कि कुफ़्फ़ार से यूं मदद तलब करना, तमाम फुक़हा के नज़दीक हराम है और ऐसा करने का नतीजा यही होता है कि तमामतर कुर्बानियों के बावजूद जिहाद अपने हतमी हदफ तक नहीं पहुंच पाता।

कुफ़्फ़ार से मदद तलब करने के बारे में कई अहादीस वारिद हुई हैं जो बज़ाहिर आपस में (बाहर) टकराती हुई महसूस होती हैं। वोह अहादीस जो मदद तलब करने से मना करती हैं, उनमें दर्जे–ज़ेल रिवायत भी शामिल हैं :

1. सहीह मुस्लिम में रिवायत है कि रसूलुल्लाह (ﷺ) ने बद्र के दिन एक मुश्रिक से फ़र्माया :
"वापस लौट जाओ, क्योंकि मैं किसी मुश्रिक से हरगिज़ मदद नहीं लेता।"
(मुस्लिम, किताबुल जिहाद, नेलुलऔतार–128/7)

एक और हदीसे–मुबारका में यह अल्फ़ाज मिलते हैं, *हम मुश्रिकों के ख़िलाफ़ मुश्रिकों से मदद नहीं तलब करते। (मुसनद अहमद, तबरानी)*

जबकि इसके बरअक्स ये वाक़िया भी सहीह हदीस में मर्वी है कि **सफ़वान बिन उमय्या** मुश्रिक होते हुए रसूलुल्लाह (ﷺ) के साथ गज़्वे में शरीक हुआ। इमाम नौवी रह. *तहज़ीबुल असमा* में फ़र्माते हैं :

"सफ़वान बिन उमय्या काफ़िर होते हुए नबी (ﷺ) के साथ गज़्वा–ए–हुनैन में शरीक हुआ।" (तहज़ीबुल असमा वललुग़ात–263)

नीज़, रसूलुल्लाह (ﷺ) ने हुनैन के दिन सफ़वान बिन उमय्या से ज़िरहें भी उधार लीं और उससे फर्माया *:"(ये चीज़ें) उधार हैं (और तुम्हें) वापस कर दी जाएंगी।"*
(हदीस सही, रवाहुल हाकिम, सहीहुल–जामेअ–3967)

और अहले–सैर के नज़दीक ये वाक़िया भी साबित है कि उहद के दिन रसूलुल्लाह (ﷺ) के साथ **क़ज़मान** नामी शख़्स भी ग़ज़्वे में शरीक हुआ और उसने मुश्रिकों के तीन अलमबर्दारों को क़त्ल किया। रसूलुल्लाह (ﷺ) ने क़ज़मान के बारे में फर्माया :

"बेशक अल्लाह इस दीन की मदद फ़ाजिर शख़्स से भी करवा लेता है।"

अहादीस के इस ज़ाहिरी तआरूज़ की वजह से इस मसले के बाज़ पहलुओं में अहले–इल्म का इख़्तिलाफ़ है। तमाम अहादीस को जमा करते हुए उलमा–ए–किराम मुख़्तलिफ़ आराअ् (रायों) तक पहुंचे हैं, जिनमें से एक राए ये है कि :

"इब्तिदा में मुश्रिकीन से मदद तलब करना *कुल्लियतन* मना था, मगर बाद में कुछ रूख़्सत दे दी गइ। "अलतलख़ीस" में हाफ़िज़ रह. कहते हैं : इमाम शाफ़ई रह. ने इस राए की तसदीक़ की है और उस पर आपका वाज़ेह क़ौल भी मौजूद है।" (नेलुलऔतार–44/8)

अलबत्ता इस बात पर तो चारों फ़ुक़हा का इत्तिफ़ाक़ है अगर दर्ज ज़ैल (नीचे लिखी) शराइत पूरी हो रही हों तो कुफ़्फ़ार से मदद लेना जाइज़ है:

1. इस्लाम का हुक्म ही ग़ालिब हो, यानी मुसलमान इतने ताक़तवर हों कि अगर वोह मुश्रिक जिनसे मदद तलब की जा रही है और वोह जिनके ख़िलाफ मुसलमान क़िताल कर रहे हैं, दोनों इकट्ठे हो जाएं, तब भी मुसलमान उन सब पर ग़ालिब आ जाएं।

2. जिन काफ़िरों से मदद तलब की जा रही हो वोह मुसलमानों के बारे में अच्छी सोच रखते हों और मुसलमानों को उनसे ख़यानत का खदशा (अन्देशा) न हो। ये बात उनके अमली सुलूक और मामलात में बआसानी पता चल सकती है।

3. जिस काफ़िर या जिन कुफ़्फ़ार से मदद तलब की जा रही है, मुसलमान उनकी मदद के वाक़िअतन मुहताज हों।

मसला, जेरे–बहस में मज़ाहिबे–अरबाअ की आराअ

(चारों इमामों की राय)

(अ) हनफ़िया की राए –

इमाम मुहम्मद बिन हसन शहबानी रह. फ़र्माते हैं:

"अगर इस्लाम का हुक्म ही ग़ालिब हो, तो इस बात में कोई हर्ज नहीं कि मुसलमान अहले–शिर्क़ के खिलाफ़ अहले–शिर्क़ से मदद तलब करें ।"

(शरह, किताबुल सीरत : 152)

इमाम जसास रह. फ़र्माते हैं :

"हमारे अ़स्हाब (यानी अहनाफ़) की राए ये है कि : मुश्रिकीन के खिलाफ़ क़िताल में दीगर मुश्रिकीन से मदद ले लेना जाइज़ है, बशर्ते कि जब फ़तह हासिल हो तो इस्लाम का हुक्म ही ग़ालिब आए ।" (अहकामुल–कुर्आनलिल–जसास)

(ब) मालिकिया की राए –

इब्नेक़ासिम रह. फर्माते हैं :

"मेरी राय में कुफ़्फ़ार से यूं मदद लेना कि वोह मुसलमानों के साथ मिलकर लड़ें, दुरूस्त नहीं, अलबत्ता अगर वोह बतौर मल्लाह या ख़ादिम साथ हों तो कोई हर्ज नहीं ।" (अल मुदव्वनह अल कुबरा–40/2)

इसी तरह इमाम मालिक रह. फ़र्माते हैं :

"मेरी राए में मुश्रिकीन के ख़िलाफ़ मुश्रिकीन से मदद लेना जाइज़ नहीं सिवाए इस सूरत में जब बतौर ख़ादिम काम करें ।" (अबकुर्तबी–100/8)

(स) शाफ़िया की राए –

इमाम रमली रह. फ़र्माते हैं :

"इमाम या उसके नाइब के लिए कुफ़्फ़ार, हत्ताकि अहले–हरब से भी मदद लेना जाइज़ है, मसलन (इस सूरत में) जब ये मालूम हो कि (जिन) कुफ़्फ़ार (मदद तलब की जा रही है वोह) हमारे बारे में अच्छी सोच रखते हैं । मगर ये मदद तलब करना तभी जाइज़ होगा जब हमें वाक़िअतन इस बात की ज़रूरत हो कि दुश्मन के ख़िलाफ़ लड़ाई में या बतौर ख़ादिम कोई हमारी मदद करे।"

(नहयातुल मुहताज़–58/8, वतकमिलतलु–मजमुआ–28/19)

(द) हनाबिला की राए –

इमाम इब्ने–कुदामा रह. फर्माते हैं :

"इमाम अहमद से ऐसे अक़्वाल मन्कूल हैं जो मुश्रिकीन से मदद लेने के जवाज़ पर दलालत करते हैं। बल्कि इमाम अहमद रह. के बारे में तो ये भी रिवायत किया गया है कि जम्हूर उलमा की राए के बरख़िलाफ़,आप रह.मुसलमानों के इमाम के साथ जंग में शरीक होने वाले काफ़िर को माले–ग़नीमत में से हिस्सा देने के भी क़ाइल थे ।" (अल–मुग़्नी–414/8)

बाब–हश्तुम (नवाँ अध्याय)

कुफ़्फ़ार से मुआहिदात (समझौते)

मराहिले–जिहाद की तर्तीब को समझना बेहद ज़रूरी है।

कुफ़्फ़ार से सुलह के जवाज़ पर क़लम उठाते हुए बहुत से मुसन्नफ़ीन ठोकर खाते हैं और नुजूले–अहकाम के तारीखी मराहिल जाने बग़ैर ही कुर्आनी आयात से इस्तदलाल करना शुरू कर देते हैं। हमारे लिए इस तर्तीब को जानना नागुज़ीर(ज़रूरी)है,जिसके मुताबिक़ जिहाद से मुताअल्लिक़ कुर्आनी अहकामात बतदरीज नाज़िल होते रहे, यहाँ तक कि अल्लाह तआला ने **सूरः तौबा** की,**"आयते–सैफ़"** नाज़िल फ़र्माई :

وَقَاتِلُوا الْمُشْرِكِينَ كَافَّةً كَمَا يُقَاتِلُونَكُمْ كَافَّةً وَاعْلَمُوا أَنَّ اللَّهَ مَعَ الْمُتَّقِينَ **(36)**

"और उन सब मुश्रिकीन से लड़ो,जैसे कि वोह सब तुमसे लड़ते हैं और ये जान रखो कि अल्लाह तआला मुत्तक़ियों का साथी है।" (सूर :तौबा 36)

فَإِذَا انسَلَخَ الْأَشْهُرُ الْحُرُمُ فَاقْتُلُوا الْمُشْرِكِينَ حَيْثُ وَجَدتُّمُوهُمْ وَخُذُوهُمْ وَاحْصُرُوهُمْ وَاقْعُدُوا لَهُمْ كُلَّ مَرْصَدٍ **(5)**

"बस जहां कही मुश्रिकों को पाओ उन्हें क़त्ल करो, उन्हें पकड़ो, उनका मुहासरा (घेराव) करो और उनके लिए हर घात में तैयार बैठो।" (सूर : तौबा : 5)

कुफ़्फ़ार से क़िताल का हुक्म मुतलक़न दिया जा चुका है।

इमाम इब्ने–क़य्यिम (मराहिले–जिहाद के बारे में) **"ज़ादुलमआद"**में वाज़ेह तौर पर लिखते हैं :

पहला मरहला– *मक्का–मुकर्रमा में जिहाद हराम था।*

दूसरा मरहला– *हिजरत के मौक़े पर इसकी इजाज़त दी गई।*

तीसरा मरहला– *फिर उसके बाद जिहाद का हुक्म दिया गया, मगर सिर्फ उनके खिलाफ़ जो खुद जंग का आग़ाज करें।*

चौथा और आख़िरी मरहला– *और बिलआख़िर तमाम के तमाम मुश्रिकीन के खिलाफ़ जिहाद का हुक्म दे दिया गया।*

इमाम इब्ने–आबेदीन हनफ़ी रह. फर्माते हैं :

''जान लो कि क़िताल के अहकामात तर्तीब से नाज़िल हुए। चुनांचे, इब्तिदा में रसूलुल्लाह (ﷺ) को तब्लीग़ करने और मुशिरिकीन से एअराज़ बरतने का हुक्म था। अल्लाह तआला फ़र्माते हैं :

فَاصْدَعْ بِمَا تُؤْمَرُ وَأَعْرِضْ عَنِ الْمُشْرِكِينَ **(94)**

''बस आपको जिस बात का हुक्म दिया जा रहा है वोह साफ़–साफ़ सुना दीजिए और उन मुश्रिक़ीन से मुंह फेर लीजिए।'' (सूर : हिज्र 94)

फिर आप (ﷺ) को बेहतरीन तरीक़े से बहस करने का हुक्म दिया गया :

ادْعُ إِلَى سَبِيلِ رَبِّكَ بِالْحِكْمَةِ وَالْمَوْعِظَةِ الْحَسَنَةِ وَجَادِلْهُم بِالَّتِي هِيَ أَحْسَنُ **(125)**

''आप अपने रब की राह की तरफ दावत दीजिए हिक़मत से और अच्छी नसीहत से और उनके साथ बहस कीजिए उस तरीक़े से जो बेहतरीन हो।''
(सूर : नहल 125)

फिर मुसलमानों को क़िताल की इजाज़त दी गई :

أُذِنَ لِلَّذِينَ يُقَاتَلُونَ بِأَنَّهُمْ ظُلِمُوا وَإِنَّ اللَّهَ عَلَى نَصْرِهِمْ لَقَدِيرٌ **(39)**

''ज़िन (मुसलमानों) से (क़ाफिर) जंग कर रहे हैं उन्हें भी (मुक़ाबले की) इजाज़त दी जाती है क्योंकि उन पर बहुत ज़ुल्म किया गया है और बेशक अल्लाह उनकी मदद करने पर क़ादिर है।'' (सूर : हज 39)

फिर क़िताल का हुक्म दिया गया, मगर उन हालात के लिए जब दुश्मन हमले में पहल करे:

فَإِن قَاتَلُوكُمْ فَاقْتُلُوهُمْ كَذَلِكَ جَزَاءُ الْكَافِرِينَ **(191)**

''हाँ अगर वोह खुद तुमसे लड़ें तो तुम भी उन्हें क़त्ल करो। ऐसी ही सज़ा है क़ाफिरों के लिए।'' (सूर : बक़र 191)

फिर इस शर्त के साथ क़िताल का हुक्म दिया गया कि जब हराम महीने गुज़र चुके हों :

فَإِذَا انسَلَخَ الْأَشْهُرُ الْحُرُمُ فَاقْتُلُوا الْمُشْرِكِينَ حَيْثُ وَجَدتُّمُوهُمْ وَخُذُوهُمْ وَاحْصُرُوهُمْ وَاقْعُدُوا لَهُمْ كُلَّ مَرْصَدٍ **(5)**

"और जब हुरमत के महीने गुज़र जाएं तो जहाँ कहीं मुश्रिकों को पाओ, उन्हें क़त्ल करो, उन्हें पकड़ो, उनका मुहासरा (घेराव) करो और उनके लिए हर घात में तैयार बैठो।" (सूर : तौबा 5)

और बिलआख़िर कुफ़्फ़ार के खिलाफ़ क़िताल का हुक्म मुतलक़न (आख़िरी शक्ल में) दे दिया गया :

وَقَاتِلُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ الَّذِينَ يُقَاتِلُونَكُمْ وَلَا تَعْتَدُوا إِنَّ اللَّهَ لَا يُحِبُّ الْمُعْتَدِينَ **(190)**

"और क़िताल करो अल्लाह की राह में उन लोगों से जो तुमसे लड़ते है और हद से मत बढ़ो, यक़ीनन अल्लाह हद से बढ़ने वालों को पसन्द नहीं करता।"

(सूर : बक़र 190) (हाशिया, इब्ने–आबिदीन– 239/3)

लिहाज़ा नुजूले–आयात के इस ज़मानी मरहले को समझने की अहमियत साफ़ ज़ाहिर है, जिसमें आयते–सैफ़ की सूरत में क़िताल के हत्मी अहकामात नाज़िल हुए।

(जब जिहाद के हतमी अहकामात नाज़िल किए चुके तो अब किसी को ये हक़ नहींकि मौजूदा दौर को मक्की दौर के मिस्ल क़रार देकर जिहाद को मुअत्तल कर दो क्योंकि इस तरह तो आज शराब व सूद की अदम हुरमत का सवाल भी खड़ा हो जाएगा कि मक्की दौर में ये भी हराम न थे। जबकि हमारे सामने अल्लाह का ये हुक्म मौजूद है :

الْيَوْمَ أَكْمَلْتُ لَكُمْ دِينَكُمْ وَأَتْمَمْتُ عَلَيْكُمْ نِعْمَتِي وَرَضِيتُ لَكُمُ الْإِسْلَامَ دِينًا **(3)**

"आज हमने तुम्हारे लिए तुम्हारे दीन को मुकम्मल कर दिया है और अपनी नेअमत तुम पर तमाम कर दी हैं और तुम्हारे लिए इस्लाम के दीन होने पर मैं रज़ामन्द हो गया।" (सूर : माइदा : 3)

अलग़र्ज़ हमारे लिए शरिअत के हतमी अहकामात ही हुज्जत हैं। (मुतर्जिम)

ख़िलाफ़ते–इस्लामिया के क़याम से पहले, मज़ाकरात (बातचीत) व मुआहिदात (समझौते) जाइज़ नहीं !

मैं इब्तिदा ही में इस बात की तरफ इशारा कर देना चाहूंगा कि दावत के इब्तिदाई मराहिल में, जब इसके पास अपने उसूलों के तहफ़्फ़ुज़ के लिए कोई कुव्वत व इक़्तिदार न

हो,किसी क़िस्म के सियासी मज़ाकरात और मकालमे करना जाइज़ नहीं।

वजह ये है कि कमज़ोरी के आलम में मज़ाकरात शुरू कर देने से दावत के बुनियादी उसूल ही ख़तरे में पड़ जाते हैं, दावत अपने असल ख़दो–ख़ाल(शक्लो–सूरत) भी बरक़रार नहीं रख पाती और हक़ व बातिल के एक मेज़ पर इकट्ठे बैठने से लोग भी हक़ को ठीक–ठीक पहचानने में नाक़ाम रहते हैं। अन्जामे–कार नतीजा इसके सिवा कुछ नहीं निकलता कि ये अज़ीम दावत सियासी खेल–तमाशों और बैनुलअक़्वामी साज़िशों में फंस कर ज़ाए हो जाती है। बेशक इस मरहले के लिए तो कुर्आन हमें ये मुहकम हिदायात देता है :

قُلْ يَا أَيُّهَا الْكَافِرُونَ **(1)** لَا أَعْبُدُ مَا تَعْبُدُونَ **(2)** وَلَا أَنتُمْ عَابِدُونَ مَا أَعْبُدُ **(3)**

"कहो, ऐ क़ाफ़िरों ! मैं उसकी इबादत नहीं करता जिसकी तुम इबादत करते हो, ना तुम उसकी इबादत करते हो जिसकी मैं इबादत करता हूँ ..."

(सूर : काफ़िरून 1-3)

ऐसे हालात में तो एक मोमिन का मुअकफ़ ये होता है :

قُلِ ادْعُوا شُرَكَاءَكُمْ ثُمَّ كِيدُونِ فَلَا تُنظِرُونِ **(195)** إِنَّ وَلِيِّيَ اللَّهُ الَّذِي نَزَّلَ الْكِتَابَ وَهُوَ يَتَوَلَّى الصَّالِحِينَ **(196)**

"उनसे कहो कि बुला लो अपने ठहराए हुए शरीकों को, फिर तुम सब मिलकर मेरे खिलाफ़ तदबीरें करो और मुझे हर्गिज़ मुहलत न दो। यक़ीनन मेरा हामी व नासिर वो अल्लाह है जिसने ये किताब नाज़िल की है और वह नेक बन्दों की मदद फ़र्माता है।" (सूर :आराफ़ 195-196)

बस नताइज से बेपरवाह होकर,अपनी बुनियादी दावत का ऐलान कर देना लाज़िम है। दाइयाने–दीन का फ़र्ज़ बनता है कि वोह इस्लाम की हक़ीक़ी दावत को लेकर उठ खड़े हों और उसे बिला कमो–कास्त दुनिया के सामने पेश कर दें ,ताकि उन्हें भी आज़माइश की बेड़ियों से गुज़ारा जाए, उन्हें भी तकलीफ का सामना करना पड़े, यहां तक कि पेहम सब्र व इस्तिक़ामत की ईमानी तपिश उन्हें कुन्दन बना ड़ाले।

पूरे मक्की दौर में रसूलुल्लाह (ﷺ) और आप के सहाबा रज़ि. इसी दो टूक मुअक़िफ़ पर जमे रहे। हाँ,अलबत्ता एक मर्तबा इस्लामी ख़िलाफत क़ायम हो जाए तो उसके बाद मुआहिदात करने में कोई चीज़ रूकावट नहीं होती।

कुफ़्फ़ार से मुआहिदा करने की शराइत !

कुफ़्फ़ार से मुआहिदा व सुलह करने के मसले में उलमा का इख़्तिलाफ़ है, बाज़ उलमा ने सुलहे–हुदैबिया को मिसाल बनाते हुए इसकी इजाज़त दी है। बाज़ ने सिर्फ उन हालात के लिए इजाज़त दी है जब मुसलमान इन्तिहाई कमज़ोर हों और बाज़ ने सुलह करने को हर हाल में नाजाइज़ क़रार दिया है, क्योंकि उनके नज़दीक *''आयाते–सैफ़''* ने कुफ़्फ़ार के साथ मुआहिदा के हर जवाज़ को मन्सूख कर दिया है ।

हम ये कहते हैं कि अगर कुफ़्फ़ार से मुआहिदा करने में मुसलमानों की मस्लिहत हो तो ऐसा करना जाइज़ है, बशर्ते कि मुआहिदे की शर्तों में कोई ऐसी बात न पाई जाती हो जो इस मुआहिदे को शरिअत की रू को बातिल या फासिद कर ड़ाले। मसलन :

1. कोई ऐसी शर्त शामिल न हो जो मुसलमानों की गज़ भर ज़मीन भी कुफ़्फ़ार को दे।

ये बात किसी तौर जाइज़ नहीं कि मुआहिदे में कोई ऐसी शर्त शामिल हो जो मुसलमानों की गज़ भर ज़मीन भी कुफ़्फ़ार को दे या उस पर उनका क़ब्ज़ा तस्लीम करे।

(नहायातुल मुहताज–58/8)

(कुफ़्फ़ार को किसी मुस्लिम सरज़मीन पर अड्डे (जैसेकि क़तर,बहरीन,सऊदी अरब में) फ़राहम करना भी इसी उसूल की रू से हराम है व पाकिस्तान का कश्मीर का एक बड़ा हिस्सा चीन को दे देना भी कुछ ऐसा ही है। (मुतर्जिम))

सरज़मीने–इस्लाम चूंकि किसी की ज़ाती मिल्कियत नहीं, इसलिए इसे अमलन कुफ़्फ़ार के हवाले करना तो बहुत दूर की बात है, किसी को ये हक़ भी नहीं पहुंचता कि इस बारे में मज़ाकरात (बातचीत) तक करे। ऐसी कोई भी शर्त मुआहिदे को बातिल कर देती है, क्योंकि ज़मीन दरहक़ीक़त अल्लाह की और फिर अल्लाह के दीने–इस्लाम की है और किसी को ये हक़ नहीं कि वोह किसी दूसरे की मिल्कियत में दखल दे, या कोई ऐसी चीज़ बेचे या तोहफ़े में दे ड़ाले जिसका वोह सिरे से मालिक ही नहीं।

चुनांचे जब तक रूस अफ़ग़ानिस्तान (और अब चेचेन्या वग़ैरह) का आखिरी गज़ तक खाली नहीं कर देता, जब तक यहूदी पूरे फ़िलिस्तीन से निकल नहीं जाते(और अब इसी तरह अमरीका, बर्तानिया और दीगर सलीबी मुमालिक इराक़ व अफ़ग़ानिस्तान से भाग नहीं जाते, जज़िरा–ए–अरब और दीगर मुस्लिम इलाक़ों में क़ायम अड्डे ख़त्म नहीं कर देते(मुतर्जिम) ... तब तक उनमें से किसी से भी मज़ाकरात करना जाइज़ नहीं !

2. जब जिहाद फ़र्ज़े–ऐन हो जाए तो दुश्मन से सुलह के तमाम मुआहिदे(समझौते व सुलह) बातिल हो जाते हैं।

जब जिहाद फ़र्ज़े–ऐन हो जाए तो दुश्मन से सुलह के तमाम मुआहिदे बातिल हो जाते हैं,मसलन जब दुश्मन मुसलमानों की किसी भी सरज़मीन पर हमला कर दे या मुसलमानों को नुकसान पहुंचाने की कोशिशों में हो तो सुलह का कोई मुआहिदा बरक़रार नहीं रहता। *''फ़तहुल उला अल मालिक''*में सुलह और मुआहिदात के मौजू के तहत *''अलमेअयार''* के बाबुल जिहाद के हवाले से ये वाज़ेह फ़तवा मौजूद है।

''अगर ख़लीफ़ा ईसाइयों से सुलह के मुआहिदे पर दस्तख़त कर दे, मगर मुसलमानों को साफ़ नज़र आ रहा हो कि उस वक़्त उनके लिए जिहाद ही का हुक्म है, तो ख़लीफ़ा की जानिब से किया गया मुआहिदा टूट जाएगा और उनका ये फ़ेअल मरदूद ठहरेगा।'' (फतहुल उला अलमालिक–182/1)

चुनांचे जहाँ कहीं भी जिहाद फ़र्ज़ होगा, सुलह करना जाइज़ न रहेगा, मसलन जब दुश्मन मुसलमानों पर ग़ालिब हो। इसी तरह जिहाद के फ़र्ज़े–ऐन होने की दीगर जितनी सूरतें हम पहले ज़िक्र कर चुके हैं, उन सब में भी सुलह करना मना है,क्योंकि सुलह करने का लाज़िम नतीजा यही निकलेगा कि अल्लाह तआला की जानिब से आइदकर्दा एक फ़र्ज़े–ऐन,यानी जिहाद की अदायगी ग़लत क़रार पाएगी, जबकि बालादस्त हाथ कुफ़्फ़ार ही का रहेगा, हालांकि दिफ़ाई जिहाद में तो मतलूब ही ये होता है कि कुफ़्फ़ार की शौक़त तोड़कर मुसलमानों को उनके शर से निजात दिलाई जाए।

क़ाज़ी इब्ने–रूश्द नक़ल करते हैं कि *उलमा इस बात पर मुत्तफ़िक़ हैं कि अगर जिहाद फ़र्ज़े–ऐन हो जाए तो उसकी फ़र्ज़ियत ''फ़र्ज़े–हज'' से भी बढ़कर होती है। क्योंकि जिहाद जब फर्ज़ हो जाए तो उसकी फ़ौरी अदाएगी लाज़िम होती है, जबकि हज को मुअख़्ख़र करने की शायद फिर भी कोई गुंजाइश मौजूद हो।*

कोई भी ऐसा शख़्स जो शरिअत में उसूलों पर गहरी निगाह रखता हो, इसी नतीजे पर पहुंचेगा कि मज़कूरा बाला मुआहिदा व सुलह को तोड़ना फ़र्ज़ है क्योंकि ऐसा मुआहिदा फ़र्ज़े–ऐन तर्क करने का ज़रिया भी बनता है, जो किसी भी सूरत में जाइज़ नहीं और ज़ाहिर है कि नाजाइज़ हुक्म की पाबन्दी कभी लाज़िम नहीं हो सकती।

3. हर वोह शर्त बातिल है जो शरियत को मुअत्तल करने या शआइरे–दीन की अहमियत घटाने का सबब बने।

हर वोह शर्त बातिल है जो शरिअत को मुअतल करने या शआइरे–दीन की अहमियत घटाने का सबब बने। मसलन : रूस (और अब इसी तरह अमरीका व यूरोप)

से कोई ऐसा मुआहिदा करना जाइज़ नहीं जिसके नतीजे में वोह अफ़ग़ानिस्तान (ईराक़, बोस्निया और चेचेन्या वग़ैरह) में क़ायम होने वाली हुकूमतों में किसी तौर भी दख़लअन्दाज़ी कर सकें, क्योंकि ऐसा करना जिहाद पर पानी फैरने और उसके अहदाफ़ को ज़ाया व बर्बाद करने के मुतरादिफ़ होगा।

(मिस्र का इज़राईल व अमरीका से कैम्प डेविड समझौता, इस तरह के बातिल समझौते की जीती जागती मिसाल है जिसमें हुस्ने–मुबारक ने यहूदो–नसारा के हाथों फ़िलीस्तीन के तहफ़्फ़ुज़ को बेच डाला– मुतर्जिम)

4. शरिअत किसी ऐसे मुआहिदे की इजाज़त नहीं देती जिसमें मुसलमानों की ज़िल्लत की एक छोटी सी झलक तक दिखती हो।

शरिअत किसी ऐसे मुआहिदे की इजाज़त नहीं देती जो मुसलमानों की तज़लील का बाइस बने, या जिसमें मुसलमानों की ज़िल्लत का शाइबा (निशान) तक झलकता हो। जैसा कि इमाम जुहरी रह. ये हदीस नक़ल करते हैं कि :

''जब (ग़ज़्वाए ख़न्दक़ के मौक़े पर एक तरफ़ मुश्रिकीन का लश्कर मुतक़ल्लन सरों पर मौजूद था और दूसरी तरफ़ यहूद से ख़यानत का ड़र था, जिसकी वजह से मुसलमानों के घर भी महफ़ूज़ न रहे थे और हर सिम्त से ही हमले का ख़ौफ़ था, जब ये कठिन सूरते–हाल ख़त्म होती नज़र न आई और) लोगों पर आज़माइश की शिद्दत बहुत बढ़ गई तो रसूलुल्लाह (ﷺ) ने *क़बीला–ए– ग़तफ़ान के दो सरदारों, वएअना बिन हिस्न बिन हनीफ़ा बिन बद्र और हारिश बिन अबी औफ़ अलमज़नी की तरफ़ अपना नुमाइन्दा भेजा और उन्हें इस शर्त पर मदीना के फलों की पैदावार का एक तिहाई हिस्सा देने की पेशकश की कि वोह अपने लश्कर को लेकर वापस लौट जाएं। बस रसूलुल्लाह (ﷺ) और उनके बीच सुलह की बात तै हो गई, मगर गवाहों की मौजूदगी में मुआहिदे को हतमी (आख़िरी) शक्ल नहीं दी गई। बस जब रसूलुल्लाह (ﷺ) ने मुआहिदे को हतमी शक्ल देने का इरादा फ़र्माया तो आप (ﷺ) ने हजरत साद बिन मुआज़ रजि. और हजरत साद बिन उबादा रजि. को बुला भेजा और उनसे **मशवरा** तलब फ़र्माया। आप (ﷺ) ने उन्हें तफ़सीलन सारी सूरते–हाल बताई और उनसे ये भी फ़र्माया :*

''हम जानते हैं कि पूरा अरब (आपके ख़िलाफ़ एक होकर) एक ही कमान से आप पर तीर बरसा रहे हैं, तो क्या आप की राय में ये मुनासिब होगा कि हम उन्हें मदीना के फ़लों में से कुछ हिस्सा न दें?''

सहाबा रज़ि. ने जवाबन अर्ज किया :

''ऐ अल्लाह के रसूल (ﷺ)! अगर आप (ﷺ) की यही राय है तो आप (ﷺ)

की राए की इत्तिबाअ़ की जाएगी, लेकिन (अगर ऐसा नहीं ,तो) हमने तो कभी उन्हें एक खजूर तक नहीं दी, इल्ला ये कि ये हमसे कुछ खरीदें या बतौर मेहमान हमारे पास आएं और ये तो उस वक़्त की बात है कि जब हम क़ाफ़िर थे, अब तो अल्लाह ने हमें इस्लाम के ज़रिए इ़ज़्ज़त भी बख़्शी है ! ''सहाबा–ए–किराम का ये जवाब सुनकर रसूलुल्लाह (ﷺ) बहुत खुश हुए।'' *(इ़अलाउस्सुनन 8/12, मुर्सल–क़वी)*

अन्सार रज़ि.को सुलह के इस मुआ़हिदे में अपनी तज़लील(बेइ़ज़्ज़ती)महसूस हुई,चुनांचे उन्होंने सुलह करना पसन्द न किया,और *रसूलुल्लाह (ﷺ) ने भी अपने असहाब रज़ि.की राए को पसन्द करते हुए सुलह करने से इन्कार कर दिया।* बाज़ रिवायत में सहाबा रजि. के ये अल्फ़ाज भी मन्क़ूल हैं : *''हम तुम्हें तलवार (की मार) के सिवा कुछ न देंगे।'' (अहकामुल क़ुर्आन लिल जसास)*

5. मुआ़हिदे में ऐसी कोई शर्त नहीं हो सकती जो इस्लामी शरिअत के वाज़ेह अहकामात से मुतसादिम हो।

मुआ़हिदे में ऐसी कोई शर्त नहीं हो सकती जो इस्लामी शरियत के वाज़ेह अहकामात से मुतसादिम हो। मसलन :

(अ) ऐसी शर्त जो कुफ़्फ़ार को जज़िरा–ए–अ़रब में रहने की इजाज़त दे, क्योंकि रसूले–अकरम (ﷺ) का फ़र्मान है :

''मैं ज़रूर बिलज़रूर यहूद व नसारा को जज़िरा–ए– अ़रब से निकाल कर दम लूंगा यहां तक कि मुसलमान के सिवा किसी को बाक़ी नहीं छोडूंगा।''

(अल फ़तहुल रब्बानी 120/14)

(ब) ऐसी शर्त जिसके नतीजे में कोई मुसलमान औ़रत कुफ़्फ़ार को लौटाई जाए :

فَإِنْ عَلِمْتُمُوهُنَّ مُؤْمِنَاتٍ فَلَا تَرْجِعُوهُنَّ إِلَى الْكُفَّارِ لَا هُنَّ(10)

''बस जब तुम जान लो कि वोह (औ़रतें)मुसलमान हैं तो उनको कुफ़्फ़ार की तरफ़ मत वापस करो क्योंकि न तो वोह औ़रतें उन काफ़िरों के लिए हलाल हैं और न वोह काफ़िर उन औ़रतों के लिये हलाल हैं।'' (अलमुमतहिन्ना–10)

अलबत्ता इस मसले में उलमा का इख़्तिलाफ़ है कि क्या किसी मुसलमान मर्द को कुफ़्फ़ार की तरफ़ लौटाना जाइज़ है या नहीं ?

बाज़ फ़ुक़हा सुलहे–हुदैबिया पर क़यास करते हुए इसकी इजाज़त देते हैं, लेकिन बेशतर के नज़दीक ऐसा करना जाइज़ नहीं और उसकी बजह से बयान की जाती है कि सुलहे–हुदैबिया में मक्का से मदीना आने वाले मुसलमानों को मुश्रिकीन की तरफ़ लौटा

देने का जो वादा किया गया था, उसकी इजाज़त सिर्फ़ रसूलुल्लाह (ﷺ) के लिए थी, क्योंकि आप (ﷺ) को पहले से मालूम था कि अल्लाह तआला उन मुसलमानों के लिए निजात की कोई सूरत पैदा फ़र्माएंगे।

लिहाज़ा, हम भी इसी राए को तर्जीह देते हैं।

हजरत बराअ बिन आज़िब रजि. फ़र्माते हैं :
रसूलुल्लाह (ﷺ) ने हुदैबिया के दिन तीन शराईत पर मुश्रिकीन से सुलह की थी, जिनमें ये भी शामिल थी कि : जो मुसलमान नबी (ﷺ) के पास से मुश्रिकों की तरफ जाएगा, उसे लौटाया नहीं जाएगा। जो मुसलमान मुश्रिकों से निकल कर नबी (ﷺ) के पास आएगा, उसे वापस कर दिया जाएगा।

इस मौक़े पर रसूलुल्लाह (ﷺ) ने फ़र्माया था :

''जो कोई हममें से निकल कर उनके पास जाए तो अल्लाह तआला उसको दूर ही रखे और जो कोई उनमें से निकल कर हमारे पास आएगा तो अल्लाह उसके लिए कोई **रास्ता निकाल देगा और उसकी मुश्किल को आसान कर देगा।''**

(मुस्लिम) (देखिये, तफ़सीर अलकुर्तबी 39/8)

(जो लोग कुफ़्फ़ार के साथी बनकर मुसलमानों को दुश्मन के हवाले करते हैं वोह सुलह हुदैबिया की शराइत में भी अपनी हरकतों का जवाज़ तलाश नहीं कर सकते, क्योंकि :

1. ये वोह इस्लामी क़यादतें नहीं हैं कि जिन्हें मुसलमानों का नुमाइन्दा बनकर कुफ़्फ़ार से मुआहिदा करने का हक़ हो।

2. जिहाद आज फ़र्ज़े–ऐन है, इसलिए हमलावर कुफ़्फ़ार से मुआहिदातो–सुलह करना और पुरअमन सिफ़ारती (एक–दूसरे के यहां राजदूत रखना) ताल्लुक़ात करना वैसे ही जाइज़ नहीं।

3. ये लोग हालते–अमन में किसी मुसलमान को कुफ़्फ़ार के हवाले नहीं कर रहे हैं, बल्कि इस्लाम के खिलाफ़ जारी जंग में कुफ़्फ़ार के साथी बनकर हक़–गौ उलमा, फी सबीलिल्लाह ख़र्च करने वाले अहले–ख़ैर और कुफ़्फ़ार के खिलाफ़ बरसरे–पैकर मुजाहिदीन को पकड़ कर दुश्मनों के हाथ बेच रहे हैं। इस फ़ेअल को कुर्आन न सिर्फ हराम क़रार देता है बल्कि यहां तक कहता है :

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا لَا تَتَّخِذُوا الْيَهُودَ وَالنَّصَارَىٰ أَوْلِيَاءَ

بَعْضُهُمْ أَوْلِيَاءُ بَعْضٍ وَمَن يَتَوَلَّهُم مِّنكُمْ فَإِنَّهُ مِنْهُمْ **(51)**

"ऐ ईमान वालों! यहूद व नसारा को अपना दोस्त मत बनाओ। ये एक दूसरे के दोस्त हैं और तुम में से जो कोई भी उन्हें अपना दोस्त बनाए वोह उन्हीं में से है।" (अलमाइदा : 51)

(क्या मुशर्रफ़, मुबारक, मक़तूमो–फहद, और करज़ई को उलमा–ए–सू ने यह आयाते–रब्बानी नहीं सुनाई, या उन्होंने इन आयात को अपने लिये मन्सूख समझ लिया है।

(मुतर्जिम))

6. मुसलमानों के इलाक़े में कुफ़्फ़ार को अपने शआइर (मज़हबी निशानियों) के इज़हार की इजाज़त देना जाइज़ नहीं।

इसी तरह ये भी जाइज़ नहीं कि मुआहिदे में कोई ऐसी बात शामिल हो जो कुफ़्फ़ार को मुसलमानों के इलाक़े में अपने शआइर के इज़हार की इजाज़त दे। मसलन, कोई ऐसा मुआहिदा जो कुफ़्फ़ार को अपनी इबादतगाहें, मसलन कलीसा–मन्दिर (पाकिस्तान में कृष्ण मन्दिर व कटरासिराज मन्दिर, जिसकी स्थापना, इस्लामदुश्मन आड़वाणी को बुलाकर की गई थी) वग़ैरह तामीर करने की इजाज़त दे या ईसाई मिश्नरियों (और उसी क़िस्म की ऐन.जी.ओज़ वग़ैरह) को मुसलमानों के किसी भी इलाक़े में, बिलख़ुसूस जज़िरा–ए–अ़रब में घुसने का मौक़ा दे, क्योंकि उनका हदफ़ इसके सिवा कुछ नहीं होता है कि वोह मुसलमानों को फ़ितने में मुब्तिला करें और उनके अ़क़ाइद को तबाह व बर्बाद करें।

शरिअ़त के इन उसूलों की रोशनी में ये बात बिल्कुल वाज़ेह हो जाती है कि फिलिस्तीन (जो दरहक़ीक़त मुसलमानों और इस्लाम की सरज़मीन है, उस) का कोई सियासी हल ढूंढ़ना या उसके लिए किसी से मज़ाकिरात करना न सिर्फ़ ग़लत है, बल्कि अपनी असल के ऐतबार से ही ऐसा बातिल है कि किसी भी हीले–बहाने से उसे दुरूस्त क़रार देना मुमकिन नहीं।

जहां तक अफ़ग़ानिस्तान का ताअ़ल्लुक़ है तो अगर चन्द शराइत पूरी होती हों तो यहां मुआहिदे–सुलह करने की इजाज़त दी जा सकती है :

1. रूस (और अब अमरीका और यूरोपीय व सलीबी अक़्वाम भी) मुसलमानों की तमाम सरज़मीनों से बग़ैर शर्त निकल जाएं।

2. अफ़ग़ानिस्तान से उनके निकलने के बाद यहां इस्लामी इमारत क़ायम हो और ये उसमें किसी क़िस्म की मुदाख़िलत न करें। मसलन न बादशाह को वापस लाने की कोशिश की जाए, न ही कोई ऐसी शराइत मुसल्लत की जाएं जिनका मक़सद अहले–अफ़ग़ानिस्तान के अ़क़ाइद को बिगाड़ना हो।

3. अफ़ग़ानिस्तान से उनका निकलना बग़ैर शर्त हो।

4. ये मुजाहिदीन की हैसियत बाक़ायदा तौर पर तसलीम करें और खुद उनसे सुलह की दरख़्वास्त करें, (न कि मुसलमान उनसे सुलह की भीख़ मांगे) क्योंकि अल्लाह तआला का फ़र्मान है :

وَإِن جَنَحُوا لِلسَّلْمِ فَاجْنَحْ لَهَا وَتَوَكَّلْ عَلَى اللَّهِ(61)

"और अगर वोह (कुफ़्फ़ार) सुलह की तरफ झुकें तो तुम भी उसके लिए आमादा हो जाओ और अल्लाह पर तवक्कल करो।" (सूर : अन्फाल : 61)

अस्सदी रह. और इब्ने–जैद रह. फ़र्माते हैं :

"अगर वोह खुद तुम्हें सुलह की पेशकश करें तब तुम दावत कुबूल कर लो।"

(हाशिया अश–शिरवानी व इब्नुल क़ासिम, अलातुहफ़तुल मुहताज 306/9)

सही राय यही है कि किसी मुआहिदे में मौजूद फ़ासिद(गलत व नाजायज़) शर्त उस पूरे मुआहिदे को ही फ़ासिद कर देती है। मसलन,

**कोई ऐसी शर्त जो, मुसलमान क़ैदियों की रिहाई में रूकावट बनती हो,
या इस्लामी मकबूज़ात पर उनके क़ब्जे को बरक़रार रखती हो,
या कुफ़्फ़ार की क़ैद से फ़रार होने वाला मुसलमान क़ैदी उन्हें वापस करती हो,
या कुफ़्फ़ार को हिजाज़ (अरब) में रहने की इजाज़त देती हो,
या हमारे इलाक़ों में शराब या उरयानियत (नंगापन) के फ़ैलने का ज़रिया बनती हो,
या कुफ़्फ़ार में से निकलकर हमारे पास आने वाले किसी भी शख़्स को वापस लौटाती हो।"(तफ़सीरूल–कुर्तबी 39/8)**

7. मुजाहिदीन मुतमईन हों कि दुश्मन सुलह की पेशकश में मुख़्लिस है और धोखा नहीं देना चाहता।

मुजाहिदीन मुतमईन हों कि दुश्मन सुलह की पेशकश में मुख़्लिस है और धोखा नहीं देना चाहता। लिहाज़ा आज जो लोग *'पुरअमन हल'* का मुतालबा कर रहे हैं या कोई *'दरम्यानी रास्ता'* ढूंढ़ने के ख़्वाहिशमन्द हैं और महज़ इसलिये जिहाद के हदफ़ यानि *"इस्लामी हुकूमत के क़याम और शरिअत की बालादस्ती"* के ऐलान से घबराते हैं कि ये एक ऐसा हदफ़ है जो मग़रिबी मुमालिक को नागवार गुज़रेगा और वो इसकी हर मुम्किन मुख़ालफ़त करेंगे... उन लोगों ने दरअस्ल इस बात को समझा ही नहीं कि इस जिहाद का हक़ीक़ी हदफ़ क्या है ? ये लोग किसी वाज़ेह इस्लामी सोच के हामिल हैं। *जान लीजिये कि ऐसे लोगों को जंग में साथ रखना जाइज़ नहीं।*

जिहाद व मुजाहिदीन की क़यादत करना तो दूर की बात है, ये लोग इस

क़ाबिल भी नहीं कि जिहाद में एक आम सिपाही के तौर पर भी शरीक हों, क्योंकि अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त फ़रमाते हैं :–

فَإِن رَّجَعَكَ اللَّهُ إِلَىٰ طَائِفَةٍ مِّنْهُمْ فَاسْتَأْذَنُوكَ لِلْخُرُوجِ فَقُل لَّن تَخْرُجُوا مَعِيَ أَبَدًا وَلَن تُقَاتِلُوا مَعِيَ عَدُوًّا **(83)**

"पस, अगर अल्लाह तआला तुम्हें वापस उनके दरम्यान ले जाए और आईन्दा फिर उनमें से कोई गिरोह तुम से जिहाद के लिये निकलने की इजाज़त मांगे तो कह देना कि तुम हरगिज़ मेरे साथ नहीं निकलोगे, और न मेरे हमराह होकर किसी (दुश्मने–दीन) से लड़ोगे।" (सूर : तौबा–83)

इमाम कुर्तबी रह. फ़रमाते हैं, "यह आयत इस बात की दलील है कि किसी फ़ित्नापरदाज़ या फ़ित्ने को हवा देने वाले को जंग में साथ रखना जाइज़ नहीं, बेशतर फुक़्हा ने किताबुल–जिहाद में यह बात सराहत के साथ लिखी है कि किसी ऐसे शख़्स को अपने लश्कर में शामिल करना जायज़ नहीं जो बेवकूफ़ हो या लोगों को जिहाद से रोकता हो, या फ़ित्ना व फ़साद फैलाता हो या ज़रूरत के वक़्त साथ छोड़ जाता हो या जिहाद की राह में रूकावटें डालता हो।" *(तफ़्सीरूल–कुर्तबी, 318/8)*

ऐ अल्लाह !

अफ़ग़ानिस्तान, फिलिस्तीन, चेचेन्या, इराक़, फिलिपाइन, लेबनान और हर जगह बरसरे–पैकार मुजाहिदीन की मददो–नुसरत फ़रमा। इस्लाम के परचम को सरबुलन्दी अता फरमा।

इब्ने–हजर अल–हैसमी रह. फ़र्माते हैं।

कुर्आन की ताबेअ हुकूमत क़ायम फ़र्मा।

और हमें अपनी राह में शहादत अता फ़र्मा। *(आमीन)*

बाबे–इख़्तिताम (आख़िरी अध्याय)
मसले का ताअल्लुक दिल से है।

मैं अपनी गुफ़्तगू समेटते हुए ये कहना चाहूंगा कि दलाइल का ढ़ेर लगा देने या बहुत सी नुसूस पेश कर देने से ये मसला समझ नहींआता। **इस मसले का ताअल्लुक दरहक़ीक़त दिल से है।**

अल्लाह तआला अगर दिल को नूर बख़्श दे तो उस नूर की रोशनी में इन्सान को सब कुछ साफ़–साफ़ नज़र आता है और उसे हक़ पहचानने में कोई दुश्वारी नहीं होती। लेकिन अगर दिल ही नूर से महरूम हो तो इन्सान बिल्कुल वाज़ेह चीज़ें देखने में भी नाकाम रहता है।

فَإِنَّهَا لَا تَعْمَى الْأَبْصَارُ وَلَٰكِن تَعْمَى الْقُلُوبُ الَّتِي فِي الصُّدُورِ (46)

"हक़ीक़त ये है कि आंखें अन्धी नहीं होतीं बल्कि वह दिल अन्धे हो जाते हैं जो सीनों में हैं।" (सूर : अलहज: 46)

आयाते–इलाही को समझने और दलाइल को पहचानने के लिए दिल की आंखे दरकार होती हैं और दिल की ये आंखें अल्लाह के ख़ौफ़,अहकामे–शरिअत की इताअत और इबादत में इन्हिमाक ही से मिलती हैं।

قَدْ جَاءَكُم بَصَائِرُ مِن رَّبِّكُمْ فَمَنْ أَبْصَرَ فَلِنَفْسِهِ وَمَنْ عَمِيَ فَعَلَيْهَا وَمَا أَنَا عَلَيْكُم بِحَفِيظٍ **(104)**

"अब तुम्हारे पास तुम्हारे रब की तरफ़ से रोशन दलाइल पहुंच चुके हैं, सो जो कोई बसारत से काम लेगा वोह अपना फ़ायदा करेगा और जो शख़्स अन्धा बना रहेगा वोह अनना ही नुकसान करेगा,और मैं कोई तुम्हारे ऊपर निगरां तो हूं नहीं।"

(अल–अनआम, 104)

अल्लाह तआला की अताकर्दा इस बसीरत से दिल में मअरिफ़तो–अदराक के चश्में फूट पड़ते हैं। ये वो नेअमत है जो न ही बहुत कुछ पढ़ने से हासिल होती है जो न ही कहीं से खरीदी जा सकती है। ये तो महज़ अल्लाह का इनाम होता है कि वोह किसी बन्दे की क़ल्बी बसीरत के बक़द्र उसे अपनी किताब और अपने दीन का फ़हम इनायत फ़र्मा दे।

मोमिन की फ़िरासत से ड़रो , क्योंकि वोह अल्लाह अज़्ज वजल के नूर से देखता है।

ये बसीरत दिल की ज़मीन में जड़ें पकड़ती है और इसी बदौलत इन्सान हक़ व बातिल और सच्चे व झूठे लोगों में फ़र्क़ करता है। अल्लाह तआला फ़र्माता है :

إِنَّ فِى ذَٰلِكَ لَآيَاتٍ لِّلْمُتَوَسِّمِينَ **(75)**

"यक़ीनन इसमें कई निशानियां हैं अहले–बसीरत के लिए।" (सूर : हिज्र 75)
मुजाहिद रह. इस आयत की तशरीह में लिखते हैं :
(यानी) फ़हम व फ़िरासत रखने वालों के लिए।
तिर्मिज़ी शरीफ़ में हजरत अबूसईद खुदरी रज़ि. से रिवायतकर्दा हदीस है कि रसूलुल्लाह (ﷺ) ने फ़र्माया : ***"मोमिन की फ़िरासत से ड़रो, क्योंकि वोह अल्लाह अज़्ज़वजल के नूर से देखता है, फिर आप (ﷺ) ने ये आयत पढ़ी (तर्जुमा) यक़ीनन इसमें कई निशानियां हैं अहले–बसीरत के लिए।"***

(तिर्मिज़ी, तफ़सीरूल कुर्आन अन रसूलुल्लाह (ﷺ))

ख़्वाहिशात की पैरवी करने वाले हक़ के ख़िलाफ़ चल पड़ते हैं।

अहले–इल्म में से जो भी दुनिया से मुहब्बत रखेगा और उसे आख़िरत पर तर्जीह देगा,वोह लाज़िमन अपने फ़तवों और फैसलों में,अपने खुतबों और तहरीरों में अल्लाह और उसके दीन के बारे में नाहक बात कहेगा। वजह ये कि अल्लाह सुब्हानहू तआला के अहकामात अक्सर औक़ात लोगों, बिलखुसूस अहले–इक़्तिदार (ताक़तवर लोगों)की ख़्वाहिशात और मफ़ादात से टकराते हैं। बस जो शख़्स भी अपनी ख़्वाहिशात की पैरवी करना चाहे उसे लाज़िमन हक़ के खिलाफ़ चलना पड़ेगा। अगर आलिम और हाकिम ख़्वाहिशात के पैरोकार और ओहदों के तलबगार हों, तो उनके लिए हक़ की मुख़ालिफ़त किए बग़ैर कोई चारा न होगा। बिलखुसूस जब किसी मसले में शुबहात पैदा हो जाएं, तो ये शुबहात और ख़्वाहिशात मिलकर हक़ का चेहरा छिपा लेंगे और उनकी शहवतें उन्हें खींचकर उसी सिम्त ले जाएंगी जिससे बातिल राज़ी हों।

और हक़ बिल्कुल निखर कर सामने आ जाए ,किसी शक व शुब्हे की गुंजाइश बाक़ी न बचे तो ये लोग अपनी ख्वाहिशात के हाथों मजबूर होकर उसकी खुल्लम–खुल्ला मुख़ालिफ़त पर उतर आएंगे और अपने नफ्स को ये कहकर मुतमइन करेंगे कि : **"ख़ैर है,बाद में तौबा कर लेंगे।"** ऐसों ही के बारे में अल्लाह तआला फ़र्माते हैं :

فَخَلَفَ مِن بَعْدِهِمْ خَلْفٌ أَضَاعُوا الصَّلَاةَ وَاتَّبَعُوا الشَّهَوَاتِ **(59)**

"फिर अगली नस्लों के बाद ऐसे नाख़ल्फ़ उनके जानशीन हुए कि उन्होंने नमाज़ जाए कर दीं और नफ्सानी ख़्वाहिशात के पीछे पड़ गए।" (सूर : मरयम : 59)

और ये फ़र्माने–इलाही भी उन्हीं के बारे में है :

فَخَلَفَ مِن بَعْدِهِمْ خَلْفٌ وَرِثُوا الْكِتَابَ يَأْخُذُونَ عَرَضَ هَـٰذَا الْأَدْنَىٰ وَيَقُولُونَ سَيُغْفَرُ لَنَا وَإِن يَأْتِهِمْ عَرَضٌ مِّثْلُهُ يَأْخُذُوهُ أَلَمْ يُؤْخَذْ عَلَيْهِم مِّيثَاقُ الْكِتَابِ أَن لَّا يَقُولُوا عَلَى اللَّهِ إِلَّا الْحَقَّ وَدَرَسُوا مَا فِيهِ وَالدَّارُ الْآخِرَةُ خَيْرٌ لِّلَّذِينَ يَتَّقُونَ أَفَلَا تَعْقِلُونَ(169)

"फिर अगली नस्लों के बाद ऐसे नाख़ल्फ़ उनके जानशीन हुए जिन्होंने किताबे–इलाही को विरासत में पाया (मगर फिर भी) इस हक़ीर दुनिया के फ़ायदे समेटते हैं और कहते हैं कि हमारी मग़फ़िरत ज़रूर हो जाएगी, हालांकि अगर उनके पास फिर वैसा ही माल व मताअ (दीन फ़रोशी के एवज) आने लगे तो ये उसको ले लेते हैं, क्या उनसे किताब का अहद नहीं किया जा चुका है कि अल्लाह के नाम पर वही बात कहें जो हक़ हो? और जो कुछ किताब में लिखा है कि ये उसे खुद पढ़ भी चुके हैं और आख़िरत वाला घर उन लोगों के लिए (इस दुनिया से) बेहतर है जो(उन क़बीह आमाल से) परहेज़ करते हैं, फिर क्या तुम नहीं समझते।"

(सूर : आराफ : 169)

ख़्वाहिशाते–नफ़्स की पैरवी दिल की आंखों को अन्धा कर देती है। फिर सुन्नत और बिदअत में फर्क़ करना भी मुमकिन नहीं रहता, बल्कि बाज़ औक़ात मुआमला इससे भी ज़्यादा ख़तरनाक हो जाता है और इन्सान को सुन्नत, बिदअत और बिदअत सुन्नत दिखाई देने लगती है। अगर उलमा दुनिया को आख़िरत पर तर्जीह दें, ख़्वाहिशात की पैरवी करें और हुकूमतों से ख़ौफ़ खाएं तो वोह इसी आफ़त का शिकार होते हैं।

दर्जे–ज़ेल आयात में ऐसे अहले–इल्म ही का ज़िक्र हो रहा है :

وَاتْلُ عَلَيْهِمْ نَبَأَ الَّذِي آتَيْنَاهُ آيَاتِنَا فَانسَلَخَ مِنْهَا فَأَتْبَعَهُ الشَّيْطَانُ فَكَانَ مِنَ الْغَاوِينَ **(175)** وَلَوْ شِئْنَا لَرَفَعْنَاهُ بِهَا وَلَـٰكِنَّهُ أَخْلَدَ إِلَى الْأَرْضِ وَاتَّبَعَ هَوَاهُ فَمَثَلُهُ كَمَثَلِ الْكَلْبِ إِن تَحْمِلْ عَلَيْهِ يَلْهَثْ **(176)**

"और (ऐ नबी!(ﷺ) उनके सामने उस शख़्स का हाल बयान करो जिसको हमने अपनी आयात (का इल्म) अता किया था मगर वोह उनकी पाबन्दी से भाग निकला। आख़िरकार शैतान उसके पीछे पड़ गया यहां तक की वोह भटकने वालों में शामिल होकर रहा। अगर हम चाहते तो उसे इन आयतों के ज़रिये से बुलन्दी अता करते, मगर वोह तो दुनिया की तरफ माइल हो गया और अपनी नफ्सानी ख़्वाहिशात की पैरवी करने लगा। लिहाज़ा उसकी हालत कुत्ते की सी हो गई कि तुम उस पर हमला करो तब भी ज़बान लटकाए रहे और उसे छोड़ दो तब भी ज़बान लटकाए रहे।" (सूर : आराफ़ : 175–176)

हक़ को पहचानने के लिए ईमानी बसीरत दरकार है, जो तक़वे से मिलती है।

दर्ज बाला आयात से ये बात वाज़ेह हो जाती है कि महज़ नुसूस और दलाइल का होना काफ़ी नहीं, हक़ को पहचानने के लिए ईमानी बसीरत भी दरकार है। अगर दुनिया की हिर्स(लालच) सीने में घर कर ले, गुनाहों की कसरत से दिलों पर ज़ंग चढ़ जाए और मअसियते–इलाही के सियाह नुकते फैलते–फूलते पूरे क़ल्ब को तारीक कर डालें तो नूर की कोई किरण भी दिल में दाख़िल नहीं हो पाती और जब दिल सियाह हो जाए तो इन्सान चीज़ों को अपनी असल सूरत में नहीं देख सकता, हक़ व बातिल आपस में घड़मड़ हो जाते हैं, और हक़ को पहचानना मुमकिन नहीं रहता, बल्कि हक़ बातिल और बातिल हक़ दिखने लगता है।

इन्सान को फुरक़ान यानी हक़ व बातिल में फर्क़ करने की सलाहियत तभी मिलती है, उसका दिल गुनाहों की आलूदगी से तभी पाक होता है और तभी उसे दिल के शफ़्फ़ाफ़ आईने में हर चीज़ अपनी असल सूरत में साफ़ और वाज़ेह नज़र आती है जब वोह तक़वा इख़्तियार कर ले।

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا إِن تَتَّقُوا اللَّهَ يَجْعَل لَّكُمْ فُرْقَانًا وَيُكَفِّرْ عَنكُمْ سَيِّئَاتِكُمْ وَيَغْفِرْ لَكُمْ وَاللَّهُ ذُو الْفَضْلِ الْعَظِيمِ **(29)**

"ऐ ईमान वालों! अगर तुम अल्लाह का तक़वा इख़्तियार करोगे तो वोह तुम्हें फुरक़ान अता करेगा और तुम्हारे गुनाहों को तुम से दूर कर देगा और तुम्हें बख़्श देगा और अल्लाह बड़े फ़ज़्ल वाला है।" (सूर : अनफ़ाल 29)

इसीलिए, अस्लाफ़ को जब भी कोई मसला दरपेश होता या वोह किसी मामले में उलझाव का शिकार होते, तो कहतेः

"चलो, महाज़ (मोर्चे)वालों से पूछें, क्योंकि वही लोग अल्लाह के सबसे ज़्यादा क़रीब हैं।"

"इमाम अहमद बिन हम्बल रह., अब्दुल्लाह बिन मुबारक रह. और दीगर उलमा फ़र्माते हैं कि जब लोगों के दर्मियान किसी बात में इख़्तिलाफ़े–राय पैदा हो जाए तो देखो कि महाज़ वाले किस तरफ़ हैं क्योंकि बेशक हक़ उनके साथ है, इसलिए कि अल्लाह तआला फ़र्माते हैं :

وَالَّذِينَ جَاهَدُوا فِينَا لَنَهْدِيَنَّهُمْ سُبُلَنَا (69)

(और जिन लोगों ने हमारी राह में जिहाद किया हम जरूर बिलज़रूर उनको अपने रास्तों की हिदायत देंगे।" (अनक़बूत–69)

(मज्मुआ अलफतावा लिल इब्नेतैमिया, 442/28)

जब इमाम अहमद रह. से पूछा गया कि आपके बाद हम किससे शरई मसाइल पूछा करें? तो आप रह. ने फ़र्माया : **"अबूबकर वराक़ रह. से पूछना क्योंकि वोह साहिबे–तक़वा हैं और मुझे उम्मीद है कि अल्लाह तआला उन्हें सहीह जवाब देने की तौफ़ीक़ देंगे।"**

बुख़ारी और मुस्लिम में ये मरफ़ूअ हदीस रिवायत की गई है :

"तुमसे पिछली उम्मतों में "मुहद्दिस" हुआ करते थे और अगर मेरी उम्मत में कोई ऐसा शख़्स है तो वोह उमर (रज़ि.) है।"

"मुहद्दिस" से मुराद है वोह शख़्स जिसे हक़ बात इलहाम कर दी जाए और वोह उसकी ज़बान पर जारी हो जाए, मगर वोह नबी न हो। (तिर्मिज़ी में रिवायतकर्दा एक और हदीस से इस फ़र्माने–नबवी (ﷺ) की मज़ीद वज़ाहत होती है : *"यक़ीनन अल्लाह ने उमर की ज़बान पर हक़ जारी कर दिया और उनके दिल में भी (ड़ाल दिया है)'*

(फ़तहुल–बारी, शरह सहीहुल बुख़ारी) (मुतर्जिम)

हजरत उमर रज़ि.पर अल्लाह तआला का ये खुसूसी इनआम आप रज़ि.के सिद्क़ व इख़्लास ही की बदौलत था।

इसी तरह इमाम मुस्लिम रह. अपनी सहीह में रिवायत करते हैं कि हजरत आइशा रज़ि. फ़र्माती हैं :

''रसूलुल्लाह (ﷺ) जब रात को उठते तो अपनी नमाज़ का आग़ाज़ इन कलिमात से फ़र्माते: 'अल्लाहुम्म रब्बा जिब्राईला व मिकाईला व इस्राफ़ीला फ़ातिरस्समावाति वलअर्ज़ि आलिमुल–ग़यबि वश्शहादति अन्त तहकुमू बयना इबादिका फ़ीमा कानू फ़ी ही यख़तालिफ़ून, इहदिनी लिमख़तुलिफ़ फ़ीही मिनल हक़्क़ि बिइज़्निका इन्नका तहदी मन तशाउ इला सिरातिम–मुस्तक़ीम.''

ऐ अल्लाह! (ऐ) जिब्रईल, मीकाईल और इसराफ़ील अलै. के रब! ज़मीन व आसमान को पैदा करने वाले! ग़ैब और हाज़िर का इल्म रखने वाले! आप ही अपने बन्दों के दर्मियान उन मुआमलात का फ़ैसला करेंगे जिनमें वोह आपस में इख़्तिलाफ़ किया करते थे। आप ही इस मामले में अपने इज़्न से हक़ की तरफ मेरी रहनुमाई फ़र्मा दीजिए जिसमें लोग इख़्तिलाफ़ कर रहे हैं। बिलाशुबहा आप जिसे चाहते हैं सीधे रास्ते की तरफ़ हिदायत दे देते हैं।'' (मुस्लिम)

आख़िर में हम ये आयते–मुबारका बतौर दुआ पढ़ेंगे:

رَبَّنَا افْتَحْ بَيْنَنَا وَبَيْنَ قَوْمِنَا بِالْحَقِّ وَأَنْتَ خَيْرُ الْفَاتِحِينَ(89)

''ऐ हमारे रब! हमारे और हमारी क़ौम के दर्मियान हक़ के साथ फ़ैसला फ़रमा दीजिए और आप बेहतरीन फ़ैसला करने वाले हैं।'' (सूर : आराफ़ : 89)

और हम सहीह मुस्लिम में मज़कूर ये मासूर दुआ भी पढ़ेंगे जो रसूलुल्लाह (ﷺ) अल्लाह से मांगा करते थे।

'अल्लाहुम्म मह–दीना लिमख़तलीफ़ू फ़ीही मिनल हक़्क़ि बिइज़्निका इन्नका तहदी मन तशाउ इला सिरातिम–मुस्तक़ीम'' (मुस्लिम)

ऐ अल्लाह ! आप इस मामले में अपने इज़्न से हक़ की तरफ़ हमारी रहनुमाई फ़रमा दीजिए जिसमें ये लोग इख़्तिलाफ़ कर रहे हैं। बिलाशुबहा आप जिसे चाहते हैं सीधे रास्ते की तरफ़ हिदायत दे देते हैं।'

ऐ हमारे रब! हमारी मग़्फ़िरत फ़रमा और हमारे उन भाईयों की मग़्फ़िरत फ़रमा जो हमसे पहले ईमान लाए और हमारे दिलों में ईमान वालों के लिए कोई कीना न पैदा फ़रमा ! ऐ हमारे रब ! बेशक तू बहुत शफ़क़त फ़र्माने वाला, बहुत रहम करने वाला है।

ऐ अल्लाह! हमें सआदत की ज़िंदगी और शहादत की मौत अता फ़रमा और क़यामत के दिन हमें सय्यदुल अम्बिया मुहम्मद मुस्तफ़ा (ﷺ) के गिरोह में उठा।

सुब्हानकल्लाहुम्म वबिहम्दिका अश्हदु ला इलाह इल्ला अन्त अस्तग़फ़िरूका वतुबू इलैक.

आख़िरी बात

इस किताब की आख़िरी बात लिखते हुए कलेजा मुंह को आता है, क्योंकि बात है ही ऐसी। कुफ्र की क़ौमें हर आने वाले दिन में जिस रफ्तार से इस्लाम दुश्मनी में आगे बढ़ रही हैं,ये रफ्तार ख़तरे की सारी लक़ीरें उबूर (पार) कर चुकी हैं। अमरीका और मग़रिबी मुमालिक़ खुसूसन डेन्मार्क, नारवे, इटली और फ्रांस में आए रोज़ तौहीने–कुर्आन, तौहीने–रिसालत (ﷺ) के वाक़ियात जिस तवातिर के साथ सुनने और देखने में आ रहे हैं तारीख़ में ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। चालीस मग़रिबी मुमालिक़ के 70 अख़बारात व जराइद और 200 से ज़ाइद नशरियाती चैनल अहानते–रसूलुल्लाह (तौहीने–रिसालत)(ﷺ) के मुरतकिब हुए। क्या ये ग़ैरते–मुस्लिम को मीठी नींद सुलाने की मुहिम का हिस्सा है ... या मस्जिदे–अक़्सा की तरफ़ चढ़ाई के मुक़द्दमात हैं?

दूसरी तरफ़ यहूद व नसारा की फ़ौजों ने इस्लाम के मर्कज़ अर्ज़े–हरमैन और जज़ीरातुल–अरब में ख़लीजे–बसरा से लेकर यमन के साहिलों तक,क़तर व बहरीन से लेकर जिद्दाह की फ़िज़ाओं तक और मस्क़त की वादियों से ख़ित्त–ए–शाम के सहराहों तक में अपने पंजे गाड़ रखे हैं। क्या उनके ये बहरी, बर्री और फ़िज़ाई अड्डे आलमे–इस्लाम पर क़ब्ज़ा और उसे अपना गुलाम बनाकर रखने के अलावा भी किसी और मक़सद के लिए हैं? और इस सारे मंज़र के साथ अज़ीमतर इसराईल के नक़्शे को उठाकर देखें तो बात पूरी तरह समझ में आ जाती है। सवाल ये है कि क्या कबूतर के आंखे बन्द करने से बिल्ली भाग जाएगी? क्या मुसलमानों के लिए अपने इख़्तिलाफ़ात मिटाकर कुफ्र की इस आलमी यलग़ार,और एक–एक करके बलदे–इस्लाम (मुस्लिम मुमालिक) पर क़ब्ज़ा करने की मुहिम का तोड़ करने का वक़्त अब भी नहीं आया ? क्या यहूद व नसारा और मुश्रिकीन की ललचाई हुई नज़रें और बढ़ते हुए क़दम, मुस्लिम दानिशवरों और अवाम के लिए इबरत का कोई सामान नहीं रखते ?

काशग़र व बुख़ारा के उजड़े हुए मदरसे, हस्पानिया व बलक़ान की वीरान मसाजिद, जम्मू–कश्मीर व दारूलखुलफ़ा बग़दाद की उदास फ़िज़ाएं और काबुल व बग़राम में कुर्आन के जलते भड़कते औराक़ दुनिया में हमारी हमीयत व ग़ैरत,और आख़िर में हमारी फ़लाह व निजात के परवाने पर एक सवालिया निशान ज़रूर लगाते हैं। क्या हमने कभी इस बात पर ग़ौर किया ?

वसीयत, शैख़ अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम शहीद रहमतुल्लाह अलैह.

(चन्द मुन्तख़ब इक़्तिसाबात)

अल्लाह तआला के बन्द–ए–फ़क़ीर अब्दुल्लाह बिन युसूफ़ अज़्ज़ाम की वसीयतः

بسم الله الرحمن الرحيم

यक़ीनन तमाम तअरीफ़ें अल्लाह वहदहु ला शरीक के लिये हैं। हम उसी की हम्द बयान करते हैं, उसी से मदद मांगते हैं और उसी से मग़्फ़िरत तलब करते हैं। हम अपने नुफ़ूस के शर और अपने अअमाल की बुराईयों से अल्लाह की पनाह मांगते हैं। जिसे अल्लाह हिदायत दे उसे कोई गुमराह करने वाला नहीं और जिसे वो गुमराह कर दे उसे कोई हिदायत देने वाला नहीं। मैं गवाही देता हूं कि अल्लाह के सिवा कोई अअला नहीं, वो अकेला है, उसका कोई शरीक नहीं, और मैं गवाही देता हूं कि मुहम्मद (ﷺ) उसके बन्दे और रसूल हैं। ऐ अल्लाह ! कोई काम आसान नहीं, सिवाय उसके जिसे तू आसान फ़रमा दे और तू चाहे तो ग़म झेलना भी आसान कर देता हैं अम्मा बअद :

जिहाद की मुहब्बत मेरे जज़बात व अहसासात, मेरे जिस्मो–जान और मेरी ज़िन्दगी के हर मुआमले पर छाई रही है। सूरह–तौबा, जिसकी मुहकम आयात (आयाते–सैफ़) जिहाद के हतमी अहकामात बयान करती हैं और क़यामत तक के लिये इस दीन में जिहाद के अज़ीम मुक़ामो–मर्तबे का तअय्युन भी किये देती हैं, यह मुबारक सूरत मेरे दिल को ख़ून के आँसू रूलाती और मेरे सीने को शक़ किये देती रही। क्योंकि मैं खुली आँखों से देखता रहा हूं कि मैं और तमाम मुसलमान ***क़िताल फ़ी सबीलिल्लाह*** जैसे आलीशान फ़रीज़े की अदायगी में इन्तिहाई कोताही और ग़फ़लत का शिकार हैं। इमाम मुस्लिम रह. अपनी सही में रिवायत करते हैं कि अल्लाह तआला का यह फ़रमान कि –

أَجَعَلْتُمْ سِقَايَةَ الْحَاجِّ وَعِمَارَةَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ كَمَنْ آمَنَ بِاللَّهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ وَجَاهَدَ فِي سَبِيلِ اللَّهِ لَا يَسْتَوُونَ عِندَ اللَّهِ وَاللَّهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الظَّالِمِينَ (19) الَّذِينَ آمَنُوا وَهَاجَرُوا وَجَاهَدُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ بِأَمْوَالِهِمْ وَأَنفُسِهِمْ أَعْظَمُ دَرَجَةً عِندَ اللَّهِ وَأُولَٰئِكَ هُمُ الْفَائِزُونَ (20) يُبَشِّرُهُمْ رَبُّهُم بِرَحْمَةٍ مِّنْهُ وَرِضْوَانٍ وَجَنَّاتٍ لَّهُمْ فِيهَا نَعِيمٌ مُّقِيمٌ (21) خَالِدِينَ فِيهَا أَبَدًا إِنَّ اللَّهَ عِندَهُ أَجْرٌ عَظِيمٌ (22)

क्या तुमने हाजियों को पानी पिलाना और मस्जिदे–हराम को आबाद करना उस शख़्स के अमल जैसा समझ लिया है जो अल्लाह और यौमे–आख़िरत पर ईमान रखता है और अल्लाह की राह में जिहाद करता है? अल्लाह के नज़दीक तो यह लोग बराबर नहीं हैं। और अल्लाह ज़ालिम लोगों को हिदायत नहीं दिया करता। जो लोग ईमान लाए और हिजरत की राह में जानो–माल से जिहाद करते रहे, अल्लाह के यहां तो उन्हीं का दर्जा बड़ा है, और यही लोग कामयाब हैं। उनका रब उन्हें अपनी रहमत और खुशनूदी और ऐसी जन्नतों की बशारत देता है जहां उनके लिये दाईमी नेअमतें होंगी, उनमें यह हमेशा रहेंगे, बेशक अल्लाह के पास बड़ा अज्र है।

(अत्तौबा–19–22)

यह फरमाने–मुबारक उस वक़्त नाज़िल हुआ जब कुछ सहाब–ए–किराम रज़ि.में इस बात पर इख़्तिलाफ़ पैदा हो गया कि ईमान लाने के बअद अफ़ज़लतरीन अमल कौनसा है। एक सहाबी ने फ़रमाया, कि *मस्जिदे–हराम की आबादकारी अफ़ज़लतरीन अमल है, एक और सहाबी ने फरमाया, कि हाजियों को पानी पिलाना अफ़ज़लतरीन अमल है, जब कि एक तीसरे सहाबी ने फ़रमाया, कि जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह अफ़ज़लतरीन अमल है।* अल्लाह तआला ने यह आयते–मुबारका नाज़िल फ़रमाकर वाज़ेह फ़ैसला फरमा दिया कि *जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह, मस्जिदे–हराम को आबाद करने से भी अफ़ज़ल अमल है।* बिलाशुब्हा, जिहाद की अफ़ज़लियत के बारे में अब किसी इख़्तिलाफ़ की गुंजाइश नहीं क्योंकि इस आयत का सबबे–नुज़ूल इसी मसअले में सहाबा रज़ि.का आपसी इख़्तिलाफ़ था और इस सबबे–नुज़ूल की तख़सीस या तावील भी मुमकिन नहीं क्योंकि यह नस्स खुद भी अपने मअनी में क़तई है।

अल्लाह तआला हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक रह.पर अपनी खुसूसी रहमतें नाज़िल फ़रमाए, जिन्होंने हज़रत फुज़ैल बिन अयाज़ रह. को यह अशआर लिख कर भेजे –

ऐ मक्का व मदीना के आबिद ! काश तुम हमें देख लेते तो तुम खुद
ही जान लेते कि तुमने इबादत को एक खेल समझ रखा है
आँसूओं से गाल तर करने वाले को मअलूम हो कि हमारी
गर्दनें अगर भीगी हैं तो यह हमारे खून से भीगी हैं।

आपने देखा कि अज़ीम मुहद्दिस व फ़क़ीह हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक रह.ने हज़रत फ़ज़ैल रह.से क्या फरमाया? उन्होंने हरम के साए में बैठकर की जाने वाली अज़ीम इबादत के बारे में फ़रमाया कि अगर एक तरफ़ मुसलमानों की हुरमतें पामाल की जा रही हों, ख़ून बहाया जा रहा हो, इज़्ज़तें ख़ाक में मिलाई जा रही हों और अल्लाह के दीन को जड़ से उखाड़ने की कोशिशें ज़ोरो–शोर से जारी हों, तो ऐसे में मैदाने–जिहाद का रूख़ करने की

बजाए हरम में बैठकर इबादत करना अल्लाह के दीन के साथ एक संगीन मज़ाक़ है!

जी हाँ! मुसलमानों को कुफ्फ़ार के हाथों ज़िबह होते छोड़ देना और फिर उनका लहू बहते देखकर महज़ **लाहौल** पढ़ना **इन्नालिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिउन** का विर्द करना, दूर खड़े कफ़े–अफ़सोस मलना, मगर उनकी मदद के लिये एक क़दम ना उठाना, यह अल्लाह के दीन के साथ खेल तमाशा नहीं तो और क्या है?

आख़िर कब तक हम उन झूठे अहसासात और सर्द जज़बात का नुमाईशी इज़हार कर–करके अपने आपको धोखा देते रहेंगे?

कैसे क़रार आ गया मुसलमान को ? क्यों वो चैन से बैठा हुआ है ?

ऐसे हाल में जब मुसलमान औरतें ज़ालिमो–दुश्मन के शिकंजे में हैं।

मेरी राय में मुसलमानों की सरज़मीनों पर हमलावर (या क़ाबिज़)दुश्मन को निकालना महज़ फ़र्ज़े–ऐन ही नहीं, अहमतरीन फ़र्ज़े–ऐन है, जैसा कि शैखुल–इस्लाम इब्ने–तैइमिया रह. ने फरमाया है – **ईमान लाने के बअद, दीनो–दुनिया की बर्बादी के दरप हमलावर दुश्मन को पछाड़ने से बढ़कर और कोई फ़रीज़ा नहीं है।**

मेरी राय में, वल्लाहु आलम, आज तारीके–क़िताल फ़ी सबीलिल्लाह और तारीके–नमाज़, रोज़ा या ज़कात में कोई फ़र्क नहीं।

मेरी राय में, आज दुनिया वाले ना सिर्फ़ अल्लाह रब्बुल आलमीन के सामने जो अब्द यह भारी बोझ उठाए हुए हैं, बल्कि तारीख़ भी उनसे ज़रूर हिसाब लेगी।

मेरी राय में, दअवते–दीन, तसनीफ़ो–तालीफ़ या दीनी तरबियत में मशग़ूलियत को ना तो तर्के–जिहाद का बहाना बनाया जा सकता है, ना ही अल्लाह की पकड़ से बचाने का ज़रिया।

मेरी राय में, आज ज़मीन पर बसने वाले हर मुसलमान की गर्दन में तर्के–क़िताल फ़ी सबीलिल्लाह का तौक़ है, हर मुसलमान के कंधों पर बन्दूक़ छोड़ने के गुनाह का बोझ है। बिलाशुब्हा, जो मुसलमान भी आज इस हाल में जान दे रहा है कि उसके हाथ बन्दूक़ से, बग़ैर किसी उज़्र के खाली हैं तो वो गुनाह व नाफरमानी की हालत में अल्लाह के पास पहुंच रहा है, क्योंकि वो ऐसे हालात में क़िताल को तर्क किये बैठा है जब माअज़ूरों के सिवा दुनिया के हर मुसलमान पर क़िताल फ़र्ज़े–ऐन हो चुका है, और फ़र्ज़ उसी हुक्म को कहा जाता है जिसे पूरा करने पर सवाब और तर्क करने पर गुनाह या हिसाब का सामना करना पड़े।

मेरी राय में, वल्लाहु आलम, तर्के–जिहाद के मुआमले में सिर्फ़ अन्धों, लंगड़ों या बीमारों ही का उज़्र क़ुबूल किया जाएगा या उन कमज़ोरो–मजबूर मर्दों, औरतों और

बच्चों का जिनके बस में ही नहीं कि वो जिहाद में शिरकत कर सकें,ना ही वो मैदाने-जिहाद तक पहुंचने की राह पाते हैं।

(पस,मजबूरों के सिवा) सबके सब लोग आज तर्के-जिहादो-क़िताल की वजह से गुनाहगार हो रहे हैं ,चाहे यह तर्के-क़िताल फ़िलीस्तीन या अफ़गानिस्तान के मुआमले में हो या किसी भी इस्लामी सरज़मीन के मुआमले में जहां ग़ासिब कुफ़्फ़ार ने अपने पंजे गाड़ रखे हैं और वो उसे अपने नापाक क़दमों तले रौंद रहे हैं।

और मेरी राय में, आज क़ितालो-जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह की खातिर निकलने के लिये किसी से इजाज़त मांगने की ज़रूरत नहीं। इन हालात में तो किसी के पास भी किसी दूसरे को इजाज़त देने या मना करने का हक़ बाक़ी नहीं रहा,ना वालिद का अपने बेटे पर,ना शौहर का अपनी बीवी पर(महरम की शर्त के साथ)ना क़र्ज़ख्वाह का मक़रूज़ पर,ना उस्ताद और शैख़ का शार्गिदों पर और ना ही अमीर का मुवरीन पर ऐसा कोई हक़ है।

यह महज़ मेरी ज़ाती राय नहीं,इस बात पर तो इस्लामी तारीख़ के तमाम अदवार (दौर) में उलम-ए-उम्मत का इजमाअ रहा है कि ऐसे हालात में(जब जिहाद फर्ज़े-ऐन हो जाए) औलाद अपने वालिदैन की और बीवी शौहर की इजाज़त के बग़ैर निकलेगी। जो शख़्स भी इस बारे में कोई मुग़ालता फैलाना चाहे यक़ीनन वो ज़ालिम व सरकश है और हिदायते-इलाही के बजाय अपनी ख्वाहिशे-नफ़्स का पैरोकार है। यह मसअला बिल्कुल वाज़ेह,तयशुदा और क़तई है। हर शको-शुब्हे से बाला है,लिहाज़ा इसमें किसी क़िस्म के खेल तमाशे और मनमानी तावीलो-तशरीह की कोई गुंजाइश नहीं।

तीन सूरतों में तो अमीरूल-मोमिनीन से भी इजाज़त नहीं ली जाती:

(1)जब अमीर जिहाद को मुअत्तल कर दे।

(2)जब इजाज़त मांगने से असल मक़सद ही फ़ौत हो जाए,(मसलन,जब यह नज़र आ रहा हो कि अगर इजाज़त मिलने का इन्तज़ार किया गया तो उस ताख़ीर से कोई नुक़सान हो जाएगा या दुश्मन कार्रवाई मुकम्मल करके भाग निकले।)

(3)जब पहले ही पता हो कि अमीर ने इजाज़त नहीं देनी।

मेरी राय में, दुनिया भर के मुसलमानों को अफ़ग़ानिस्तान में बहने वाले खून के एक-एक क़तरे और यहां पामाल होने वाली हर-हर इज़्ज़त का जवाब अल्लाह के दरबार में देना होगा। यक़ीनन,वल्लाहु आलम,पूरी उम्मते-मुस्लिमा उन मज़लूमों के ख़ून में बराबर की शरीक है,इसलिये कि उसके पास अपने मुसलमान बहन-भाईयों के दिफ़ाअ के लिये दरकार असलहा भी नहीं मौजूद है उम्मत के पास वो तबीब(डॉक्टर)भी हैं जो उनका इलाज-मुआलिज करें,फिर मुसलमानों के पास वो माल भी है जिससे उनकी दो वक़्त की

रोटी का बन्दोबस्त हो सके,उनके पास वो अआलात (उपकरण) भी हैं जिनसे मुजाहिदीन के लिये मज़बूत मौर्चे और खन्दक़ें खोदी जाएं,मगर यह फिर भी उनकी नुसरत से हाथ खींचे बैठे हैं

ऐ मुसलमानों !

जिहाद तुम्हारी ज़िन्दगी है,जिहाद तुम्हारी इज़्ज़त है और जिहाद ना रहा तो तुम्हारी दास्तां भी ना होगी दास्तानों में।

ऐ दीन की तरफ़ दअवत देने वालों !

सुन लो कि इस आसमान के नीचे तुम्हारी कोई वक़अत ना होगी जब तक कि तुम असलेह से आरास्ता ना हो जाओ और तवाग़ियत,कुफ़्फ़ार और ज़ालिमीन को कुचल कर ना रख दो !

जो लोग यह समझते हैं कि अल्लाह का यह मुबारक दीन जिहादो–क़िताल के बग़ैर ही क़ायम हो जाएगा,ना कोई खून बहेगा,ना कोई लाशें गिरेंगी,यक़ीनन उन्हें वहम हुआ है और वो इस दीन की फ़ितरत से नावाक़िफ़ हैं इसके मिज़ाज ही को नहीं समझते। इस्लाम की शौकतो–कुव्वत,दुश्मनों पर दाईयाने–इस्लाम की हैबत और उम्मते–मुस्लिमा की इज़्ज़त हरगिज़ क़िताल के बग़ैर क़ायम नहीं हो सकती। चुनांचे रसूले–अकरम (ﷺ) का फरमान है : *और अल्लाह तआला तुम्हारे दुश्मनों के दिलों से ज़रूर ही तुम्हारी हैबत ख़त्म कर देंगे और तुम्हारे दिलों में वहन (कमज़ोरी) डाल देंगे, तो पूछनेवाले ने पूछा, या रसूलुल्लाह (ﷺ) यह वहन क्या है ?* फरमाया, **दुनिया की मुहब्बत और मौत से नफ़रत।** एक और रिवायत में अल्फ़ाज़ मिलते हैं कि: **तुम्हारा क़िताल से नफरत करना**

नीज़ अल्लाह तआला फरमाते हैं,

فَقَاتِلْ فِي سَبِيلِ اللَّهِ لَا تُكَلَّفُ إِلَّا نَفْسَكَ وَحَرِّضِ الْمُؤْمِنِينَ عَسَى اللَّهُ أَن يَكُفَّ بَأْسَ الَّذِينَ كَفَرُوا وَاللَّهُ أَشَدُّ بَأْسًا وَأَشَدُّ تَنكِيلًا **(84)**

पस, तुम जंग करो अल्लाह की राह में, तुम अपनी ज़ात के सिवा किसी के ज़िम्मेदार नहीं , अलबत्ता मोमिनों को लड़ाई पर उभारो, अल्लाह से उम्मीद है कि वो काफ़िरों के ज़ोर को तोड़ देंगे, और अल्लाह सबसे ज़्यादा ज़ोर वाले और सबसे सख़्त सजा देने वाले हैं। (अन–निसा–84)

अगर क़िताल ना हो तो शिर्क हर सिम्त फैल जाए और दुनिया में उसी का ग़ल्बा हो।

इर्शादे–बारी तआला है:

وَقَاتِلُوهُمْ حَتَّى لَا تَكُونَ فِتْنَةٌ وَيَكُونَ الدِّينُ كُلُّهُ لِلَّهِ (39)

और उनसे जंग करो यहां तक कि फित्ना बाक़ी ना रहे और दीन सिर्फ़ अल्लाह के लिये खालिस हो जाए। (अनफ़ाल–39)

निज़ामे–दुनिया को दुरूस्त रखने का वाहिद ज़रिया भी जिहाद है।

وَلَوْلَا دَفْعُ اللَّهِ النَّاسَ بَعْضَهُمْ بِبَعْضٍ لَّفَسَدَتِ الْأَرْضُ وَلَٰكِنَّ اللَّهَ ذُو فَضْلٍ عَلَى الْعَالَمِينَ (251)

और अगर अल्लाह इन्सानों के एक गिरोह को दूसरे गिरोह के ज़रिये दफाअ ना करता रहता तो ज़मीन फ़साद से भर जाती लेकिन अल्लाह अहले–आलम पर बड़ा मेहरबान है।(अलबक़रह–251)

यही जिहाद दीनी शआईर और इबादतगाहों के तहफ़्फ़ुज़ की वाहिद ज़मानत है :

الَّذِينَ أُخْرِجُوا مِن دِيَارِهِم بِغَيْرِ حَقٍّ إِلَّا أَن يَقُولُوا رَبُّنَا اللَّهُ وَلَوْلَا دَفْعُ اللَّهِ النَّاسَ بَعْضَهُم بِبَعْضٍ لَّهُدِّمَتْ صَوَامِعُ وَبِيَعٌ وَصَلَوَاتٌ وَمَسَاجِدُ يُذْكَرُ فِيهَا اسْمُ اللَّهِ كَثِيرًا وَلَيَنصُرَنَّ اللَّهُ مَن يَنصُرُهُ إِنَّ اللَّهَ لَقَوِيٌّ عَزِيزٌ (40)

अगर अल्लाह इन्सानों के एक गिरोह को दूसरे के ज़रिये दिफाअ ना करता रहता तो(नसारा के) खलवतखाने और गिर्जे,(यहूद के)इबादतखाने और (मुसलमानों की) वो मस्जिदें जिनमें अल्लाह का नाम कसरत से लिया जाता है,सब मिस्मार कर डाली जातीं। और अल्लाह ज़रूर उसकी मदद करेगा जो अल्लाह (के दीन) की मदद करेगा। बेशक,अल्लाह कुव्वतवाला और ग़ल्बे वाला है। (अल–हज–40)

ऐ दीन की तरफ़ दअवत देने वालों !

मौत को ढूंढो,तुम्हें ज़िन्दगी मिलेगी ! देखो ! कहीं तुम्हारी तमन्नाएं तुम्हें किसी फ़रेब में मुब्तला ना कर दें। कहीं वोह धोखेबाज़ इबलीस तुम्हें अल्लाह से ग़ाफ़िल ना कर

दे। ख़बरदार ! ***महज़ किताबों के मुतालेअ और नवाफ़िल की कसरत से अपने आपको धोखे मत देना।*** ऐसा ना हो कि आसान अआमाल में मशग़ूलियत अज़ीमतर कामों को तुम्हारी निगाहों से ओझल या कमतर कर दे,

وَتَوَدُّونَ أَنَّ غَيْرَ ذَاتِ الشَّوْكَةِ تَكُونُ لَكُمْ (7)

और तुम यह चाहते हो कि ग़ैर मुस्ल्लाह(हथियारविहिन)गिरोह तुम्हें मिल जाए? (सूरह–अनफ़ाल–7)

जिहाद के मुआमले में किसी की बात मत मानो,और खूब समझ लो कि जिहाद में शिरकत के लिये अपने क़ायदे से इजाज़त लेने की ज़रूरत हरगिज़ नहीं। याद रखो! जिहाद तुम्हारी दअवत की बुनियाद है,तुम्हारे दीन का मज़बूत क़िला है और तुम्हारी शरीअत की हिफ़ाज़ती ढ़ाल है।

ऐ उल्म–ए–दीन !

उठें और उस नस्ले–नौ की क़यादत संभालें,जिसने अपनी सारी दिलचस्पियों का मरकज़ अपने रब की रज़ा को बना लिया है ! बुज़दिली का मुज़ाहिरा ना करें ! ना इस हक़ीर दुनिया की तरफ़ झुकें। लिल्लाह ! तागूतों की हमनशीनीं से बचें। यह तो सीनों की तारीकी और दिलों की मौत का बाइस है। **तागूत की कुर्बतें आपको अहले–ईमान से दूर करने का सबब बनेंगी और उनके कुलूब से अपका अहतराम जाता रहेगा।**

ऐ मेरे मुसलमान भाईयों !

बहुत सो लिया तुमने,तुम्हारे इलाकों पर क़ाबिज़ शेर की ख़ाल ओढ़े गीदड़ भी बहुत मज़े कर चुके। किसी शाइर ने क्या खूब कहा है

आख़िर कब तलक ज़िल्लत की नींद सोते रहोगे ? कब यह शेर फिर बेदार होगा ?
क्या गिद्ध तुम्हारा जिस्म यूंही नोचते रहेंगे ? कब यह गुलामी का दौर ख़त्म होगा ?
तुम लोहे की ज़ंजीरों में तो नहीं जकड़े,तुम तो अपनी ही कमज़ोरियों के क़ैदी हो !
फिर बताओ ना ! कब इस क़ैद को तोड़ोगे ? आख़िर कब ? बताओ भी !

ऐ मेरी मुसलमान बहनों !

ऐशो–आराम और सहलपसन्दी से बचिये,क्योंकि यह चीज़ें जिहाद की दुश्मन और इन्सानी नुफ़ूस के लिये इन्तिहाई मुहलिक (ख़तरनाक) हैं। आसाईशें (ऐशो–आराम की चीज़े) जमा करने के चक्कर में ना पड़ें,बस आपकी बुनियादी ज़रूरतों का पूरा हो जाना ही आपके लिये काफ़ी होना चाहिए। अपने बच्चों को मुजाहिद बनाएं। उनमें

सख़्तकोशी,मर्दानगी,और शुजाअत की सिफ़ात पैदा करें।

अपने घरों को शेरों की कछार बनाएं,मुर्गियों का दड़बा ना बनने दें,क्योंकि मुर्गियां पलकर जितनी भी मोटी हो जाएं बिलआखिर वो खाने वालों के हाथों ज़िब्ह ही होती हैं। अपनी औलाद के सीनों में हुब्बे–जिहाद की शम्अ रोशन करें,शहसवारी का शौक़ और मैदाने–जंग की मुहब्बत उनके दिलों में उतारें।

अपने सीने में मुसलमानों की मुश्किलात का अहसास बेदार रखें। कोशिश करें कि *हफ़्ते में कम से कम एक दिन ऐसा हो जब आपके घर में भी मुजाहिदीन व मुहाजिरीन जैसी ज़िन्दगी गुजारी जाए। इस दिन सालन के बग़ैर सिर्फ चाय के चन्द घूंटों के साथ सुखी रोटी खाने का मज़ा ज़रूर चखें।*

ऐ मुसलमान बच्चों !

अपने आपको बारूद की घन–गरज,जंगी जहाजों के शोर,टैंकों की गड़गड़ाहट और बरसती गोलियों के नग़मे सुनने का आदी बनाओ। और ख़बरदार ! ऐश परस्तों के साज़ और नख़रों में पलने वालों के गानों से अपने कान मत आलूदा करो,ना ही मरीज़ों की तरह बिस्तरों पर पड़े रहने की आदत डालो।

मेरे मुजाहिद भाईयों !

आप पर लाज़िम है कि राहे–जिहाद पर जमे हुए पुराने मुजाहिदों,बिलखुसूस **उसामा बिन लादेन**,अबुल हसन अल मदनी, नूरूद्दीन,अबुल हसन अल मुक़द्दसी,अबू सय्याफ़ और अबू बुरहान की क़द्र करें। जहां तक अबु माज़ून का तअल्लुक़ है तो उसे तो मैं बार–बार आज़मा चुका हूं। मैंने उन्हें आसमान से बरसते पानी से ज़्यादह पाकीज़ा और जिहाद के मुआमले में चट्टान की सी मज़बूती का हामिल और इन्तिहाई ग़य्यूर पाया है। वोह अल्लाह की तरफ़ से मुजाहिदीन के लिये एक तुहफ़ा हैं,खामोशी और मुस्तक़िल मिज़ाजी के साथ जिहाद की खिदमत में लगे हुए हैं और उसके बुनियादी सुतूनों में से एक हैं। उन सब साथियों की ग़लतियों से चश्मपोशी करो और उनकी क़द्रो–मन्ज़िलत की हिफ़ाज़त करो। भाई अबुल हसन मदनी के मुक़ामो–मर्तबे और जिहाद में उनके ज़बरदस्त किरदार को हमेशा याद रखो। अबू हाजिर की नसीहतों को ग़ौर से सुना करो और तुम्हें नमाज़ भी पढ़ाया करें,अल्लाह ने उन्हें रिक़्क़ते–क़ल्ब और खुशूअ से नवाज़ा है।

मैं ढेरों दुआएं करता हूं अपने मुजाहिद भाई ***अबू अब्दुल्लाह उसामा बिन मुहम्मद बिन लादेन*** के लिये जिन्होंने अपने ज़ाती माल से जिहाद की भरपूर ख़िदमत की और **"मकतबुल–ख़िदमात"** के अख़राजात का बोझ उठाया। मेरी दुआ है कि अल्लाह उनके अहलो–अयाल और उनके माल में बरकत डाले और हमें उन जैसे और बहुत से साथी

अता करे। मैं अल्लाह को गवाह बनाकर कहता हूं कि मुझे पूरे आलमे–इस्लाम में उसामा (शहीद रहमतुल्लाह अलैह) जैसा कोई दूसरा नज़र नहीं आता। इसीलिये मेरी दुआ है कि अल्लाह आपके ईमान और आपके माल की हिफ़ाज़त फर्माए और आपकी ज़िन्दगी को बाबरकत बना (आमीन)

व सुब्हान कल्लाहुम्म वबिहम्दिक व अशहदु ला इलाह इल्ला अन्ता अस्तग़फ़िरूक वअतुबू इलैक.

मंगल–3,शाअबान,1406 हिजरी

(22–4–1986)

अब्दुल्लाह बिन युसूफ़ अज़्ज़ाम (शहीद रहमतुल्लाह अलैह.)

(2 मई 2011 को अल्लाह ने शैख अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम शहीद रह. की शैख़ उसामा के ईमान पर खात्मे और ज़िन्दगी के बाबरकत होने की दुआ को इस तरह पूरा किया जिसे कि सारा आलमे–इस्लाम देख रहा है कि उनके मिशन को लेकर कितने लोग उठ खड़े हुए हैं।)

शहीद अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम रहमतुल्लाह अलैह

अजीब एक शख्स था, जवारे-अक़दस से उठा,
जिहाद का अलम लिये, तो उसकी एक पुकार पे,
अरबो-अजम निकल पड़े ! कई मुहाज़ शौक़ फिर, यहां-वहां पे सज गए !
वो शख़्स कोहे-अज़्म था, वक़ारे-ज़मो-बज़्म था,
वो दोस्तों के दरमियान कह रहा था एक दिन, जिहाद पर तो वो लिखे,
जो घन-गरज में तोप की, मुहाज़ का मज़ा चखे,
कहा जो उसने, कर गया, क़यादतों का एक ख़ला,
लहू से अपने भर गया, अजब शख़्स था कि जो,
क़लम की लाज रख गया, सरों पे आ गई के वो,
और अब उधर, क़दम जो उसके नक्श हैं,
वो काफ़िलों की रहगुज़र, काफ़िले ही काफ़िले,
ज़मीन के शिर्को-वस्त से, यह सिम्त गर्ब काफ़िले !
और अब कोई यह काफ़िले, रोक कर दिखाए तो !
दलीले-हक़ के रूबरू, दलील कोई लाए तो !
मुक़ाबिल आफ़ताब के दिया ज़रा जलाए तो !

हमारे अलफ़ाज़ शम्अ की लौ की मानिन्द हैं जो बिलआख़िर बुझ ही जाती है और यह अलफ़ाज़ बेजान ही रहते हैं, यहां तक कि जब हम दीन पर मर मिटते हैं, तो यही अलफ़ाज़ ज़िन्दा हो जाते हैं और ज़िन्दा इन्सानों के दरमियान अमर हो जाते हैं। (शहीद अब्दुल्लाह अज़्ज़ाम रह.)